बृहत-आर्थिक विकास की लघु बुनियादें

2

अध्याय

यह वर्ष भारत के आर्थिक पुनरूत्थान का उत्कृष्ट वर्ष रहा है। अर्थव्यवस्था 2009-10 में शुरू हुए तीव्र पुनरूद्धार के मार्ग पर चलती रही और वस्तुत: यह उच्च विकास के उस मार्ग पर लौट आई है जो वैश्विक वित्तीय संकट और आर्थिक मंदी से पहले 2005-08 के दौरान हासिल किया जा चुका था। किसी भी नजर से, इस वर्ष भारत की विकास-गाथा असाधारण रही है। इसे और भी महत्वपूर्ण बना देने वाली बात यह है कि यह विकास एक ऐसे वर्ष के बाद संभव हुआ है जिसमें 8 प्रतिशत की दर पर जबर्दस्त विकास हुआ; इसलिए इस वर्ष की उपलब्धि के श्रेय का दावा करने के लिए कोई आधार प्रभाव नहीं है। इसके अलावा, जैसाकि अध्याय 1 में चर्चा की गई है, मध्य से दीर्घावधि परिप्रेक्ष्य में विकास की बढ़िया संभावना दिखाई देती है। लेकिन, जैसाकि अक्सर आर्थिक पुनरूत्थान के साथ होता है, उच्च मुद्रास्फीति के कारण अर्थव्यवस्था दबाव में आ गई है। चूंकि यह विकास वास्तविक संदर्भ में है, इसलिए आम आदमी को अधिक वस्तुओं एवं सेवाओं के रूप में सहारा मिला हुआ है। फिर भी, जैसाकि भारत में हाल के समय में हुआ है, मुद्रास्फीति जब खास तौर पर खाद्य-पदार्थों पर केंद्रित होती है तो यह आम आदमी के लिए बड़े कष्ट का कारण बन जाती है। तो, इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि इस अध्याय का काफी बड़ा भाग मुद्रास्फीति के विषय को समर्पित है। मूल्य वृद्धि पर चर्चा समग्र मांग प्रबंधन के मुद्दे के तौर पर और उत्पादकता एवं विपणन दोनों की दृष्टि से की गई है। इस अध्याय में वित्तीय मध्यस्थता की कार्यदक्षता पर भी कुछ विस्तार से टिप्पणी की गई है। आर्थिक विश्लेषक अक्सर उत्पादन और विकास को केवल आर्थिक नीति में ही निहित हुआ मान लेते हैं। सच्चाई तो यह है कि बहुत कुछ सामाजिक, राजनीतिक और संस्थागत माहौल पर निर्भर करता है। श्रेष्ठ नीति बनाने में इस बात का समुचित ध्यान रखा जाता है। इस अध्याय के अंत में आर्थिक विकास के इन विशेष आर्थिक प्रेरणा तत्वों पर चर्चा की गई है।

समावेशी विकास और मुद्रास्फीति

2.2 यह वर्ष मुद्रास्फीति के संदर्भ में मुश्किल भरा वर्ष रहा है भले ही मुद्रास्फीति का समग्र रूख गिरावट की ओर है। मार्च और अप्रैल 2010 के आस-पास मुद्रास्फीति अपनी चरम सीमा पर पहुंच गई थी और तब से दिसंबर 2010 में परेशानी पैदा करने वाले बदलाव के बावजूद यह गिरावट का रुख लिए है। भारत में मुद्रास्फीति को थोक मूल्य सूचकांक (डब्ल्यूपीआई) और उपभोक्ताओं की विभिन्न श्रेणियों के लिए बनाए गए चार अलग-अलग उपभोक्ता मूल्य सूचकांकों से मापा जाता है। दिलचस्प बात तो यह है कि पांचों मूल्य सूचकांकों द्वारा मापित मुद्रास्फीति अक्तूबर 2010 से एक अंक में बनी हुई थी। ऐसा अप्रैल 2009 से नहीं हुआ है। सितंबर 2010 तक, 17 महीनों तक, एक न एक मुद्रास्फीति सूचकांक दो अंकों में रहा है। सच तो यह है कि मार्च 2010 से जुलाई 2010 तक पांचों सूचकांकों में दो अंकों में मुद्रास्फीति देखी गई। इसलिए यह साफ जाहिर होता है कि समग्र स्फीतिकारी स्थिति थोड़ी सहज हुई है, हालांकि खाद्य मूल्यों में हाल में हुई बढ़ोतरी चिन्ता का कारण है और इस अध्याय एवं अन्य अध्यायों में उस पर चर्चा की जाएगी। दूसरी ओर, जब औद्योगीकृत विश्व का अधिकांश दूसरी बार संभावित मंदी की ओर फिसलन के कगार पर खड़ा था, तब इस वर्ष भारत द्वारा हासिल की गई उच्च विकास दर वाकई कमाल है। जैसाकि हमेशा उच्च विकास के साथ होता है, यह अनेक महत्वपूर्ण अवसर मिलने का भी वक्त है। यही समय है जब हमें यह सुनिश्चित करना है कि अर्थव्यवस्था राजकोषीय, अवसंरचनागत और अन्य शक्तियां हासिल करे ताकि हम न सिर्फ अपने मौजूदा जीवन-स्तर में सुधार लाएं बल्कि भविष्य में संभवत: आने वाले बुरे समय के लिए संसाधन संचित करें और राजकोषीय गुंजाइश भी पैदा करें। संक्षेप में, मौजूदा पुनरूत्थान का कुछ हिस्सा भावी समुत्थान की रचना करने के लिए संचित किया जाना चाहिए।

2.3 जब विकास दर इतनी अधिक रही हो जितनी इस वर्ष भारत की रही है, तो यदि स्थिति ऐसी हो कि जनसंख्या के सभी वर्ग इस विकास में एक समान रूप से हिस्सा ले रहे हों, तब मुद्रास्फीति कोई बड़ी चिन्ता की बात नहीं होती। ऐसा इसलिए होता कि चूंकि यह विकास वास्तविक है, प्रत्येक व्यक्ति कुछ बेहतर स्थिति में है और मुद्रास्फीति इस स्थिति में कुछ नुकसान नहीं पहुंचाती। लेकिन जब औसत विकास का वितरण असमान हो तब हमें समाज के गरीब और कमजोर वर्गों की चिन्ता करनी है। आनुमानिक तौर पर यह संभव है कि देश में आय में लगभग 7 प्रतिशत प्रति व्यक्ति की वृद्धि हो जाने के चलते औसत भारतीय बेहतर स्थिति में हो, कुछ गरीब लोग असल में बदतर स्थिति में हैं क्योंकि उनकी आनुमानिक आय में न के बराबर वृद्धि हुई है और मुद्रास्फीति ने उस वृद्धि को भी व्यर्थ कर दिया है। भारत के समावेशी विकास के घोषित उद्देश्य को देखते हुए यह चिन्ताजनक मुद्दा है।

2.4 एक-समान स्मरण अवधि पर आधारित एनएसएसओ के मासिक उपभोग व्यय के 2004-05 दौर के यूनिट स्तर के आंकडों के अनुसार, भारत की ग्रामीण आबादी का सबसे निचला बीस प्रतिशत हिस्सा अपने कुल घरेलू व्यय का लगभग 67 प्रतिशत भोजन पर खर्च करता है। चूंकि वर्ष के अधिकांश के दौरान खाद्य मुद्रास्फीति 10 प्रतिशत से अधिक रही है, यह संभव है कि उच्च वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि के बावजूद ये लोग अब बदतर स्थिति में हों। इस स्थिति का समाधान गरीबों को खाद्य सुरक्षा देने का मज़बूत तंत्र तैयार करके, छोटे किसानों को सस्ता उर्वरक मुहैया कराने की अधिक कारगर प्रणालियां बनाकर, ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में गरीब परिवारों को भरोसेमंद लघु ऋण तथा बुनियादी स्वास्थ्य सहायता और ऐसी अन्य सेवाएं देकर किया जाना होगा। इस समय भारत में अनेक उपाय किए जा रहे हैं ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि हम न सिर्फ मुद्रास्फीति पर काबू पाने का प्रयास करें बल्कि हम इन समर्थकारी नीतिगत संरचनाओं को भी स्थापित करने की कोशिश करें ताकि भारत की जनसंख्या के कमज़ोर वर्ग मुद्रास्फीति की विभीषिका से बचाए जा सकें। ये नीतियां महत्वपूर्ण हैं क्योंकि भले ही सरकार का लक्ष्य मुद्रास्फीति को और कम करना है, ऐसी संभावना जताई जाने के कारण हैं कि पूर्ववर्ती वर्षों में व्याप्त लगभग 3 प्रतिशत की मुद्रास्फीति के मुकाबले मध्यावधि परिप्रेक्ष्य में अब हमें कुछ अधिक मुद्रास्फीति को सहना होगा।

2.5 मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने के उपाय करते समय यह बात ध्यान में रखना ज़रूरी है कि नीति के परिणामस्वरूप मांग में अचानक और तेज़ी से आया संकुचन बेरोज़गारी में बढ़ोतरी कर सकता है। इस तथ्य को देखते हुए कि भारत में मुद्रास्फीति के आंकड़े बहुत विस्तृत होते हैं और साप्ताहिक एवं मासिक आधार पर प्रकाशित किए जाते हैं, जबकि रोज़गार संबंधी आंकड़े लंबे समयांतराल पर प्रकाशित किए जाते हैं, मुद्रास्फीति और रोज़गार के बीच संबंध जन-जागरूकता से अछूता रह जाता है और इस मुद्दे पर बहस एकतरफा हो जाती है। लेकिन विश्वभर से प्राप्त प्रमाण दर्शाते हैं कि कम से कम अल्पावधिक परिप्रेक्ष्य में, मुद्रास्फीति और बेरोज़गारी के बीच नकारात्मक संबंध हैं। इसी वजह से सरकार के लिए बहुत ज़रूरी हो जाता है कि वह मुद्रास्फीति कम करते समय मांग प्रबंधन के उपायों को चरणबद्ध रूप से लागू करे। इसके लिए कोई सिद्ध फार्मूला नहीं है। यह उपलब्ध आंकड़ों के व्यापक अध्ययन, आर्थिक सिद्धातों से लिए सबक तथा और कुछ नहीं तो विवेक पर आधारित होना चाहिए।

2.6 घरेलू और अंतरराष्ट्रीय कारकों में निहित मुद्रास्फीति के पेचीदा स्वरूप को स्वीकारते हुए, सरकार ने मुख्य आर्थिक सलाहकार, वित्त मंत्रालय की अध्यक्षता में एक अन्त: मंत्रालयीय समूह (आईएमजी) गठित किया है जो ''प्राथमिक खाद्य-वस्तुओं के विशेष संदर्भ में समग्र मुद्रास्फीति की प्रवृत्तियों की समीक्षा'' करेगा और ''राजकोषीय, मौद्रिक, प्रशासनिक और अन्य मोर्चों पर कार्रवाई हेतु सिफारिशें करेगा।'' इस बीच, मुद्रास्फीति को समझने और उसका विश्लेषण करने में, दो अलग तरह की बातों के बीच अन्तर करना बहुत ज़रूरी है। पहली है, कुछेक वस्तुओं की अल्पावधिक सापेक्ष मूल्य वृद्धि और दूसरी है सतत् समग्र मूल्य वृद्धि। वस्तुत: अधिकतर मानक अर्थव्यवस्थाओं में पहली स्थिति को तो मुद्रास्फीति कहा तक नहीं जाता। दूसरी ओर, दूसरी स्थिति चिरसम्मत मुद्रास्फीति है और इसके लिए मौद्रिक और राजकोषीय नीतियों से जुड़े मानक उपाय किए जाने की ज़रूरत होती है। लेकिन इन दोनों प्रकार की स्थितियों के लिए बहुत अलग तरह की नीतिगत दख़ल कार्रवाई करने की आवश्यकता होती है। सतत् समग्र मूल्य वृद्धि अथवा मुद्रास्फीति के मामले में समावेशन और मुद्रास्फीति के बीच एक दिलचस्प संबंध का जिक्र करना ज़रूरी है। जहां भारतीय रिज़र्व बैंक अर्थव्यवस्था में मौजूद मुद्रा की कुल राशि को नियंत्रित करता है और वित्त मंत्रालय, भारत सरकार राजकोषीय और राजस्व घाटों को नियंत्रित करता है, वहीं जो एक बात अक्सर समझी नहीं जाती कि मुद्रास्फीति अर्थव्यवस्था में मौजूद समग्र नकदी पर निर्भर करती है और यह स्थिति फर्मों, फार्मों, निगमों और आम नागरिकों के निर्णयों और व्यवहार के कारण पैदा हो सकती है।

2.7 जैसाकि चित्र 2.1 में दिखाया गया है, भारतीय अपनी जमा पूंजी का बड़ा हिस्सा नकद के रूप में रखते हैं। ग्रामीण भारत में, लगभग 42 प्रतिशत बचतें नकद के रूप में रखी जाती हैं। ऐसे माहौल में, जब हम वित्तीय समावेशन की नीतियां शुरू करते हैं और लोगों को बैंक खाते खोलने तथा उन खातों में अपना पैसा रखने में मदद करते हैं तो हम ऐसा पैसा अर्थ-तंत्र में ला रहे होते हैं जो पहले संचलन में बेकार पड़ा था। पुरानी व्यवस्था में जहां बहुत से भारतीय, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में लोग अपनी जमापूंजी नकद रूप में अपने घरों में रखते थे, सरकार और भारतीय रिज़र्व बैंक को स्वतंत्रता थी कि स्फीतिकारी दबावों को बढ़ने दिए बिना वे अतिरिक्त व्यय कर सके। यह ऐसी ही स्थिति है कि एक व्यक्ति द्वारा अपना पैसा संचलन में न डालने का निर्णय करने से दूसरा एजेंट अपना पैसा संचलन में डालने में समर्थ हो सके और स्फीतिकारी दबाव पैदा न हों। एक बार जब लोग वित्तीय तौर पर समाविष्ट हो जाते हैं, यानि वे अपना पैसा बैंकों और म्यूचुअल फण्डों में डाल देते हैं, तो यह पैसा संचलन में आ जाता है। इसलिए, अर्थव्यवस्था में मौजूद कुल *प्रभावी* मुद्रा आपूर्ति में

बढ़ोतरी हो जाती है। ऐसी स्थिति में, यदि भारतीय रिज़र्व बैंक और भारत सरकार के व्यवहार में कोई परिवर्तन न भी हो, तो भी स्फीतिकारी दबाव पैदा हो जाएंगे। विश्व भर से ऐसे प्रमाण मिले हैं कि अर्थव्यवस्था के मुद्रीकरण और आधुनिक मुद्रा प्रबंधन तंत्र में अधिकाधिक लोगों को लाने के वांछनीय उद्देश्य के परिणामस्वरूप कीमतों पर समग्र दबाव पड़ता है। यह स्थिति है श्रेष्ठ विकास की–अधिक वित्तीय समावेशन की, जिसका अवांछित परिणाम है-अधिक स्फीतिकारी क्षमता, लेकिन इन सबसे हमें वित्तीय समावेशन प्राप्त करने के मार्ग से हटना नहीं चाहिए क्योंकि इसके समग्र लाभ अपार हैं। जो बात कही जा रही है, वह यह है कि हमें इसके दुष्प्रभावों के प्रति भी सजग रहना चाहिए और संभावित नकारात्मक प्रभावों के विरूद्ध उपयुक्त कार्रवाई करनी चाहिए।

2.8 भारत में हाल के समय में व्याप्त रही मौद्रिक और नकदी की स्थितियां उपर्युक्त विश्लेषण को बल देती हैं। समग्र मुद्रा आपूर्ति पूर्णतया नियंत्रण में प्रतीत होती है। 2010-11 में (31 दिसम्बर तक वर्षानुवर्ष) स्थूल मुद्रा (एम$_3$) की वृद्धि 16.5 प्रतिशत थी। यह न सिर्फ उचित है बल्कि यह पिछले वर्ष में 17.9 प्रतिशत की वृद्धि से कम है। संकीर्ण मुद्रा (एम$_1$) में भी 2009-10 के मुकाबले 2010-11 में कम वृद्धि हुई। इस वर्ष (31 दिसंबर तक वर्षानुवर्ष) यह वृद्धि 15.5 प्रतिशत रही और पिछले वर्ष यह वृद्धि 17.9 प्रतिशत थी। इस वर्ष के दौरान मुद्रा वृद्धि जमा वृद्धि से अधिक रही है जिसके परिणामस्वरूप मुद्रा जमा का अनुपात अधिक रहा है। इस वर्ष के दौरान सरकार को प्राप्त होने वाले बैंक ऋण की वृद्धि में भी कमी आई है। नकदी के लिए मांग इस तथ्य से भी दिखाई

चित्र 2.1 अवस्थिति के अनुसार नकद बचतों का पसंदीदा रूप

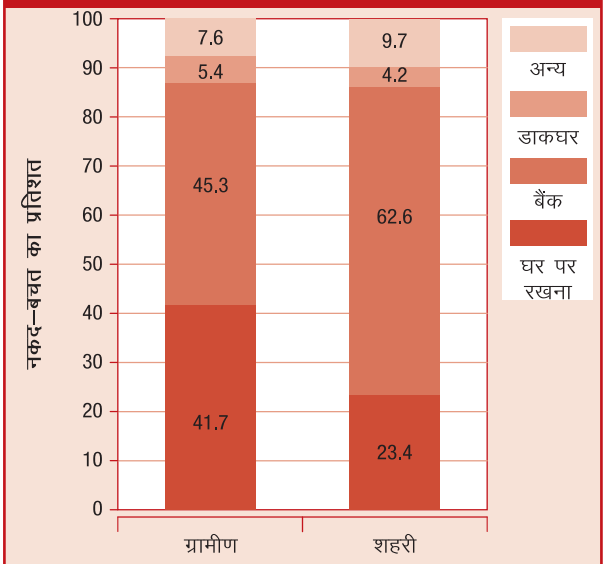

स्रोतः राष्ट्रीय अनुप्रयुक्त आर्थिक अनुसंधान परिषद–बृहत् उपभोक्ता अनुसंधान केन्द्र, एन.एस.एच.आई.ई., राजेश शुक्ला का विश्लेषण (2010), हाऊ इंडिया अर्न्स, स्पेन्ड्स एण्ड सेव्ज़: अनमास्किंग दि रियल इंडिया, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

देती है कि रेपो दर, कम से कम कैलेण्डर वर्ष 2010 के अधिकांश उत्तरार्ध में परिचालन नीति दर के रूप में उभरी है। इससे यह प्रदर्शित होता है कि रेपो दर को बढ़ाया जाना वास्तविक अर्थव्यवस्था द्वारा अच्छी तरह सहन किया जा रहा था। इन विशेषताओं के बावजूद पैदा हुई मुद्रास्फीति अन्य बैंक-भिन्न कारकों की संभावित भूमिका की ओर इशारा करती है।

2.9 एक अन्य मार्ग जिसके माध्यम से एक वांछित परिवर्तन उभरती अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी दबाव सृजित करने का प्रतिकूल प्रभाव पैदा कर सकता है, वह है वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ समेकन तथा और अधिक सामान्य रूप से कहें तो वैश्वीकरण। यह जानी मानी सच्चाई है कि गरीब देशों में क्रय शक्ति समता (पीपीपी) कम होती है। दूसरे शब्दों में, किसी गरीब देश में 100 डालर के साथ कोई अपना जीवन स्तर जितना उठा सकता है वह संयुक्त राज्य अमरीका, यूरोप अथवा किसी अन्य औद्योगिक राष्ट्र में इतनी ही राशि में हासिल किए गए जीवन स्तर से कहीं अधिक है। इस समय, भारत के पीपीपी का सुधार कारक 2.9 है। दूसरे शब्दों में, कोई व्यक्ति भारत में 100 डालर में जो कुछ खरीद सकता है, अमरीका में वही खरीदने के लिए उसे 290 डालर की जरूरत होगी। हमें यह भी पता है कि किसी देश के औद्योगीकृत होने तक पीपीपी सुधार कारक कम होना चाहिए। ऐसा अंशतः विनिमय दरों में परिवर्तनों के कारण होता है किन्तु अधिकांशतः इसलिए होता है कि पूर्ववर्ती गरीब देश में बुनियादी अविक्रेय वस्तुओं और अकुशल श्रम के मूल्यों में वृद्धि हो जाती है और वे अंशतः औद्योगिक राष्ट्रों में व्याप्त कीमतों के बराबर हो जाते हैं।

2.10 भारतीय अर्थव्यवस्था को सबसे बढ़िया शुरुआत 1990 के दशक के आरंभ में मिली जब दूरगामी प्रभाव वाले आर्थिक सुधार शुरू किए गए। 1994 से भारत अभूतपूर्व तरीके से स्पष्ट रूप से उच्च विकास पथ पर रहा था। विकास दर में अगला बड़ा उछाल

2005 में आया। यदि भारत 2005 में हासिल की गई उच्च विकास दर को बनाए रखता है, तो इसका मतलब यह होगा कि भारतीयों की वास्तविक प्रति व्यक्ति आय लगभग 1300 डालर प्रतिवर्ष के वर्तमान स्तर से बढ़कर 2039 में 10,000 डालर प्रतिवर्ष हो जाएगी। 10,000 डालर के बेंचमार्क से ज़रा सा ऊपर के देशों के लिए जरूरी पीपीपी सुधार कारक संबंधी आंकड़ों को प्रयुक्त करके हम भारत के औसत डालर मूल्य के बढ़ने की आशा कर सकते हैं। (देखें बॉक्स 2.1)। यदि ऐसा वास्तविक विनिमय दर में किसी परिवर्तन के बिना पूरी तरह कीमतों के समायोजन के माध्यम से संभव होता है, तो हमारे पास प्रतिवर्ष 2 प्रतिशत की अतिरिक्त मुद्रास्फीति दर होगी। असल में, कुछ विनिमय दर समायोजन भी होगा, हालांकि विभिन्न देशों के आंकड़े यह सुझाते हैं कि इस पर मूल्य समायोजन हावी रहता है। यदि व्यवहार रूप में हम इसके तीन चौथाई को मूल्य समायोजन द्वारा निर्धारित करते हैं, तो इसका तात्पर्य यह होगा कि अगले 30 वर्षों में विकास में यह उछाल न होने की स्थिति में व्याप्त मुद्रास्फीति दर की अपेक्षा 1.5 प्रतिशतांक अधिक मुद्रास्फीति दर रहेगी। 2003-04 से ठीक के पहले के वर्षों में, जब से सकल घरेलू उत्पाद (स.घ.उ.) वृद्धि ने रफ्तार पकड़ी (और 2005 के बाद और भी अधिक रही) थी, औसत वार्षिक डब्ल्यूपीआई मुद्रास्फीति 3.5 प्रतिशत से जरा सी कम थी (यह 2001-02 में 3.61 प्रतिशत और 2002-03 में 3.38 प्रतिशत थी)। इसका अर्थ यह है कि, यदि अन्य नीतियां अपरिवर्तित रहती है तो अगले लगभग एक दशक में होने वाले तीव्र विकास, जिसके भारत में बने रहने की बहुत संभावना है, के दौरान लगभग 5 प्रतिशत की औसत वार्षिक मुद्रास्फीति व्याप्त रहेगी। इससे ज़ाहिर होता है कि हमें मुद्रास्फीति का प्रबंध करने की अपनी मानक नीतियों पर पुनर्विचार करना होगा और यह बात यह सुनिश्चित करने की जरूरत को भी रेखांकित करती है कि भारत का विकास समावेशी हो और यह भी कि असुरक्षित वर्गों को बुनियादी सुरक्षा मुहैया कराने के लिए हमारे पास बेहतर प्रणालियां हों।

2.11 इस औसत मुद्रास्फीति के साथ-साथ निश्चित तौर पर विभिन्न वस्तुओं तथा वस्तुओं की विभिन्न श्रेणियों की कीमतों में उछाल और मूल्य सूचकांकों में गिरावट की अवधियां भी होंगी। इस प्रकार 2010-11 एक से अधिक असामान्य मुद्रास्फीति का वर्ष रहा है। कैलेण्डर वर्ष 2010 की शुरूआत में और वित्त वर्ष 2010-11 के आरंभिक महीनों में भी खाद्यान्न, चीनी और दालों की मुद्रास्फीति अधिक थी। इस वर्ष के दौरान इन वस्तुओं की मुद्रास्फीति स्थिर हो गई किन्तु नवम्बर तक अन्य वस्तुओं की कीमतों में फिर उछाल आया जिसमें प्याज, गोभी, दूध तथा कुछ अन्य उत्पादों का योगदान था। जहां हमें अक्सर मौद्रिक और राजकोषीय उपायों के जरिए अर्थव्यवस्था में समग्र मांग को नियंत्रित करने के स्थूल साधनों का प्रयोग करने के लिए विवश होना पड़ता है, वहीं इन मूल्य वृद्धियों को बाजारों की सूक्ष्म संरचना, विशेष रूप से खेत और फैक्टरी से खुदरा स्टोर और उपभोक्ता तक वस्तुओं के उत्पादन और वितरण की जांच करने के मौके के रूप में देखा जाना चाहिए। जहां अक्सर राजनीतिक बाध्यताएं सरकार को इन मूल्य वृद्धियों को नियंत्रित करने के लिए निर्यात पर प्रतिबंध लगाने और कर की दरों में परिवर्तन करने जैसे अल्पावधिक उपाय करने के लिए विवश करती हैं, वहीं इस पर दीर्घावधिक परिप्रेक्ष्य में विचार करना और ऐसी दखल कार्रवाइयों के प्रयोग से बचना ज़रूरी है। हमें उत्पादन एवं विपणन प्रणाली में मौजूद दोषों का पता लगाने तथा उनमें सुधार लाने की कोशिश के लिए ऐसी प्रत्येक स्फीतिकारी घटना का उपयोग करना चाहिए।

2.12 आगे बढ़ने से पहले, इस बात पर जोर देना जरूरी है कि सभी मूल्य वृद्धियों पर सरकारी हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। मूल्य वृद्धि और गिरावट देश में मांग और आपूर्ति के परिदृश्य में आए परिवर्तन के कारण होती है। ये मूल्य, उपभोक्ता और उत्पादकों के लिए ऐसे संकेत हैं कि वे अर्थव्यवस्था में बहिर्जात परिवर्तनों के अनुरूप ही अपने व्यवहार में बदलाव लाएं। सरकार के लिए उचित नहीं है कि वह मूल्यों में इन सभी उतार-चढ़ावों को स्थिर रखने के लिए कदम उठाए। कानूनी तरीके से मूल्य नियंत्रण करके इन मूल्य वृद्धियों पर काबू पाने का प्रयास करने से मूल्यों के कम रहने लेकिन भण्डारों से चीजें गायब हो जाने का जोखिम रहता है जैसाकि 1970 और 1980 के दशक में इस कार्यनीति को अपनाने वाले देशों में हुआ। दूसरे शब्दों में, कीमतें कम होंगी लेकिन माल नहीं होगा। ऐसी नीति के कारण और काला बाजारी उभरेंगे। जब मूल्य में अकारण वृद्धि होती है तो जरूरत यह पता लगाने की है कि क्या हमारी विपणन प्रणाली में कमियां हैं, इन बातों से सबक लिया जाए और इसकी पुनरावृत्ति को रोकने के लिए सुधारात्मक उपाय किए जाएं। नवम्बर 2009 से मई 2010 तक खाद्यान्नों की उच्च मुद्रास्फीति से खाद्य वितरण संबंधी ऐसे कुछ दोष सामने आए और इनके लिए सुधारात्मक उपाय किए गए।

2.13 इस मुद्दे पर बहस की जा सकती है कि दिसम्बर 2010 और जनवरी 2011 के दौरान सब्जियों खास तौर से प्याज के मूल्य में देखी गई तेजी हमारे खाद्य उत्पादन और विपणन प्रणाली में कमियों को दर्शाती है। इस अवधि के दौरान जो बात सामने आई वह यह थी कि एक ही उत्पाद की खेत के स्तर पर की कीमतों और शहर की खुदरा दुकानों पर कीमतों में भारी अन्तर था और यह अन्तर भिन्न-भिन्न शहरों और कस्बों में भी दिखाई दे रहा था। उदाहरण के लिए 7 जनवरी 2011 को आगरा में प्याज 30 रुपए किलो और दिल्ली में 57.50 रुपए बेचा जा रहा था; नागपुर के प्याज 35 रुपए किलो और मुम्बई में 62 रुपए किलो, तिरुवनन्तपुरम में प्याज 23 रुपए किलो और डिन्डीगुल में 60 रुपए किलो। निश्चित रूप से दक्षता से कार्य करने और प्रतिस्पर्द्धात्मक बाजार के चलते मूल्यों में यह अन्तर चल नहीं पाता। मूल्यों में यह अन्तर साफ-साफ तौर पर जमाखोरी की कहानी तो इतनी नहीं कहता जितना कि यह कि व्यवसायी समूहन की वजह से नए कारोबारियों का बाज़ार में प्रवेश नहीं हो पाता। प्रतिस्पर्द्धा अधिनियम 2002 के उपयोग से इस समस्या को हल करने की आवश्यकता है।

2.14 जब हम बाजार में और कारोबारियों के बीच इन परिपाटियों को नियंत्रित करने के लिए राज्य तंत्र को स्वतंत्रता दे देते हैं तो अक्सर जमाखोरी, नए लोगों का प्रवेश न होने देना, छल-कपट से मूल्य में तेजी लाने जैसे व्यवहार के मिले-जुले रूप को एक जैसा मान लेने की और इन सभी को कदाचार मानने की प्रवृत्ति रहती है जिससे बचा जाना चाहिए। फिर भी ऐसे व्यवहारों को एक

बॉक्स 2.1 क्रय शक्ति समता (पीपीपी) में वृद्धि की प्रक्रिया और मूल्य स्तरों में वृद्धि

क्रय शक्ति समता (पीपीपी) वृद्धि संबंधी मुद्रास्फीति की यह संकल्पना इस अनुभव से सृजित हुई कि जैसे-जैसे देश प्रति व्यक्ति स.घ.उ. के संदर्भ में विकास करते जाते हैं, अपेक्षित पीपीपी समायोजन कम होता जाता प्रतीत होता है (चित्र देखें)। भारत, पाकिस्तान, निकारागुआ और वियतनाम जैसे देश जिनका 2009 में प्रति व्यक्ति स.घ.उ. लगभग 850 अमरीकी डालर से 1200 अमरीकी डालर था, उनका औसत पीपीपी सुधार कारक लगभग 2.3[1] प्रतीत होता है। इसके मुकाबले तुर्की, उरूग्वे, मेक्सिको और ब्राजील जैसे देश जिनका प्रति व्यक्ति स.घ.उ. 8500 से 12,000 अमरीकी डालर की बीच है, का औसत पीपीपी सुधार कारक लगभग 1.6 है। इसलिए, यह प्रतीत होता है कि जैसे-जैसे किसी देश का प्रति व्यक्ति स.घ.उ. बढ़ता है उसका पीपीपी सुधार कारक कम होता जाता है। इससे यह भी पता चलेगा कि पीपीपी सुधार कारक में इस स्पष्ट कमी के कारण कीमतों में कुछ वृद्धि होगी। उदाहरणार्थ, 1980 में ब्राजील में 2.7 के पीपीपी सुधार कारक के साथ प्रति व्यक्ति स.घ.उ. 1371 अमरीकी डालर था। 2009 तक उसका प्रति व्यक्ति स.घ.उ. 8220 अमरीकी डालर और पीपीपी सुधार कारक 1.3 था। इस समय भारत का 2.9 के पीपीपी सुधार कारक के साथ वार्षिक प्रति व्यक्ति स.घ.उ. 1300 अमरीकी डालर के आसपास है। यदि भारत का पीपीपी सुधार कारक 1.6 के स्तर (8,500-12,000 अमरीकी डालर के प्रति व्यक्ति स.घ.उ. वाले देशों का औसत पीपीपी सुधार कारक पर पहुंचता है तो लगभग 30 वर्षों की अवधि में यह केवल इस पीपीपी समायोजन (यदि मुद्रा का कोई अधिमूल्यन न हो) के कारण ही प्रतिवर्ष 2 प्रतिशत मुद्रास्फीति का सामना करेगा।

इसका सैद्धान्तिक आधार बलासा और सैम्यूअलसन के शोध कार्य से लिया गया है। जैसाकि फ्रूट और रोगॉफ (1995) ने स्पष्ट किया है, बलासा-सैम्यूअलसन प्रभाव बताता है कि विनिमय दरों में समायोजन करने के बाद धनी देशों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (सीपीआई) गरीब देशों के सीपीआई की तुलना में अधिक होंगे और यह कि तेजी से विकास करने वाले देशों के सीपीआई में धीमा विकास करने वाले देशों के सीपीआई की अपेक्षा अधिक वृद्धि होगी। यह आधारभूत प्रक्रिया ऐतिहासिक रूझान से उद्भूत हुई है, जिसमें अविक्रेय क्षेत्र के मुकाबले विक्रेय वस्तुओं के क्षेत्र में प्रौद्योगिकीय प्रगति अधिक तीव्र है। विक्रेय वस्तु क्षेत्र में बढ़ती मजदूरियों से समग्र अर्थव्यवस्था में मजदूरी में बढ़ोतरी होती है। अविक्रेय वस्तु के निर्माता को फिर अधिक मजदूरी के भुगतान के लिए अविक्रेय वस्तुओं की सापेक्ष कीमत में बढ़ोतरी करने की जरूरत पड़ जाती है।

क्रय शक्ति समता समायोजन कारक और प्रति व्यक्ति स.घ.उ. (2009)

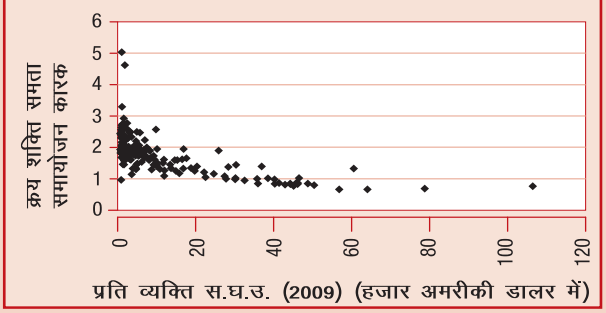

मान लें कि हम भारत में एक वस्तु समूह पर विचार कर रहे हैं जिसकी कीमत आज 5000 रुपए है। 50 रुपए प्रति अमरीकी डालर की विनिमय दर से भारत में इसकी कीमत 100 अमरीकी डालर होगी। 2.9 के पीपीपी सुधार कारक के चलते वही वस्तु समूह अमरीका में 290 अमरीकी डालर में मिलेगा। मान लें कि यदि 30 वर्षों में अमरीका में कोई मुद्रास्फीति नहीं होती है, और भारत का पीपीपी सुधार कारक कम होकर 1.6 के आसपास आ जाता है तो जो वस्तु समूह 290 अमरीकी डालर मूल्य का है, वह भारत में लगभग 181 अमरीकी डालर मूल्य का होगा। यदि विनिमय दर 50 रुपये प्रति अमरीकी डालर बनी रहती है तो वस्तु समूह का मूल्य 9050 रुपये होगा। इसका अर्थ यह होगा कि 30 वर्षों के लिए पीपीपी में वृद्धि संबंधी मुद्रास्फीति प्रति वर्ष लगभग 2 प्रतिशत रहेगी (संमिश्र वार्षिक वृद्धि दर-सीएजीआर)। दूसरी चरम संभावना यह है कि भारत में कोई मुद्रास्फीति नहीं हो और यह समायोजन केवल तभी होगा जब रुपये का मूल्य बढ़कर प्रति अमरीकी डालर 27.6 रुपये हो जाने से 5000 रुपये का वस्तु समूह 181 अमरीकी डालर मूल्य हो जाएगा।

इन दो चरम विकल्पों के बीच अपेक्षाकृत कम अधिमूल्यन और कुछ कम मुद्रास्फीति दर के अन्य मिले जुले रूप होंगे। यदि हम वर्तमान मध्यम आय वाले देशों के वास्तविक वैश्विक उदाहरण पर विचार करें (सारणी 1), तो बहुत कम देशों में उनकी प्रति व्यक्ति आय बढ़ने के अनुसार मुद्रा का अधिमूल्यन हुआ प्रतीत होता है। ब्राजील में प्रति व्यक्ति स.घ.उ. में भारी वृद्धि के चलते अधिक मुद्रास्फीति के साथ मुद्रा में मूल्यह्रास हुआ था। पोलैण्ड, उरूग्वे, चिली, वेनेजुएला और मेक्सिको में भी अच्छी खासी वृद्धि, पीपीपी कारक में कमी होना, मुद्रा का अवमूल्यन, और मुद्रास्फीति की स्थिति रही थी। ये उदाहरण उच्च विकास के कारण पीपीपी वृद्धि के विचार को कुछ विश्वसनीयता प्रदान करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप मुद्रा में अधिमूल्यन न होने की स्थिति में उच्च मुद्रास्फीति पैदा होती है।

सारणी 1 : कुछ मध्यम आय वाले देशों में प्रति व्यक्ति स.घ.उ., मुद्रा अवमूल्यन, मुद्रास्फीति और पीपीपी समायोजन

देश	प्रति व्यक्ति स.घ.उ. 1980	प्रति व्यक्ति स.घ.उ. 1990	प्रति व्यक्ति स.घ.उ. 2009	मुद्रा अवमूल्यन (1993-2009)	औसत वार्षिक मुद्रास्फीति (1993-2009)	पीपीपी समायोजन 1990	पीपीपी समायोजन 2009
रूस	उन	उन	8681.4	3100.7	99.7	उन	1.7
मेक्सिको	3291.9	3395.1	8133.9	333.7	11.3	2.1	1.7
ब्राजील	1371.6	3463.9	8220.4	5123.6	245.2	1.5	1.3
तुर्की	2235.1	3859.5	8711.2	14,010.3	47.4	1.4	1.4
सेशेल्स	2793.5	6366.5	9253.0	162.7	6.1	1.6	2.6
उरूग्वे	3845.7	3319.2	9420.5	472.6	17.1	1.6	1.4
लीबिया	12,795.5	7063.1	9511.4	n/a	2.4	1.4	1.4
चिली	2492.9	2409.1	9515.9	38.8	5.3	2.0	1.5
इक्वेटोरियल गिनी	143.9	294.6	9577.2	66.8	7.7	1.5	1.9
लिथुआनिया	उन	उन	11,115.1	-42.8	35.0	उन	1.5
पोलैंड	1591.3	1625.2	11,302.1	72.2	10.8	3.6	1.6
वेनेजुएला	4650.0	2481.6	11,383.0	2263.5	34.0	2.8	1.1
लात्विया	उन	उन	11,465.6	-25.1	15.3	उन	1.2

टिप्पणी : आंतरिक परिकलन, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) के आंकड़ों पर आधारित हैं।
आंकड़ों का स्रोत : आईएमएफ, वर्ल्ड इकोनोमिक आउटलुक (डब्ल्यूईओ) तथा अंतरराष्ट्रीय वित्तीय सांख्यिकी (आईएफएस)
संदर्भ : केनेथ ए. फ्रूट एण्ड केनेथ रोगॉफ (1995) पर्सपेक्टिव्ज़ ऑन पीपीपी एण्ड लांग रन रियल एक्सचेंज रेट्स', जीन ग्रॉसमैन और केनेथ रोगॉफ (संपा.) *हैण्डबुक ऑफ इंटरनेशनल इकोनोमिक्स*, खंड 3 में नॉर्थ हॉलैण्ड, एमस्टरडम
[1] वर्तमान कीमतों पर प्रति व्यक्ति स.घ.उ., पीपीपी के लिए समायोजित नहीं किया गया। उ.न.-उपलब्ध नहीं

जैसा मानने और कारोबारियों को दंडित करने से फायदे से ज्यादा नुकसान अधिक हो सकता है। हमारे कानून के रखवालों को न्यायसंगत कार्यकलापों और वास्तविक कदाचारों के बीच अंतर करना सीखना होगा। उदाहरण के लिए कोलेस्ट्रोल की तरह जमाखोरी, अच्छी और बुरी दोनों हो सकती है। जब आम नागरिक बुरे दिनों के लिए जमा करते हैं तो वे मूल्य में उतार-चढ़ाव को स्थिर करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। यह अच्छी जमाखोरी की श्रेणी में आता है। जब सरकार नए भाण्डागार और भण्डारण सुविधा स्थापित करने की बात करती है, तो वह इस प्रकार की जमाखोरी के सामाजिक रूप से हितकारी क्रियाकलाप को अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकारती है। दूसरी ओर, जब बड़े व्यापारियों द्वारा जानबूझकर मूल्यों में चालबाज़ी करने के लिए जमाखोरी की जाती है, तो यह अर्थव्यवस्था के लिए हानिकारक हो सकता है और उपभोक्ताओं के हितों के खिलाफ जा सकता है। हमें इस प्रकार की जमाखोरी को दूर करने की आवश्यकता है। प्रधानमंत्री कार्यालय द्वारा 13 जनवरी 2011 को जारी महत्वपूर्ण प्रेस विज्ञप्ति जिसके परिणामस्वरूप पूर्व-उल्लिखित आईएमजी गठित किया गया, में विविध प्रकार की जमाखोरियों के बीच अंतर करने की आवश्यकता के प्रति जागरूकता दर्शाई गई है और इसमें यह कहा गया है 'सरकार बाजार मूल्यों में हेराफेरी करने वाले जमाखोरों और काला बाजारियों के विरुद्ध कड़े कदम उठाएगी।' ''मूल्यों में हेराफरी'' शब्द महत्वपूर्ण हैं। इसी पैरा में न सिर्फ आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955 बल्कि प्रतिस्पर्द्धा अधिनियम 2002 के प्रयोग की आवश्यकता की ओर ध्यान देने का संकेत दिया गया है।

2.15 प्रतिस्पर्द्धा अधिनियम की मुख्य प्रासंगिकता स्थापित हो चुके व्यापारियों की नए व्यापारियों को बाजार में प्रवेश से रोकने की स्वाभाविक प्रवृत्ति के संदर्भ में है। पहले के एक पैराग्राफ में यह कहा गया है कि किस प्रकार से एक ही दिन में एक ही वस्तु की फार्म गेट और भिन्न-भिन्न खुदरा केंद्रों पर कितनी अलग-अलग कीमत थी। इससे बाजार में नए व्यापारियों के प्रवेश पर रोक की समस्या का पता चलता है। नीति विश्लेषक के लिए यह समझ लेना जरूरी है कि मूल्यों में इतने बड़े मार्जिन और वर्तमान व्यापारियों द्वारा अर्जित बड़े परिणामी लाभों का सबसे बड़ा प्रतिकारक वह प्रेरणा है जो इस समय बाज़ार में प्रचालन न कर रहे लोगों को बड़े मार्जिनों से लाभ कमाने के लिए मिलती है। यदि हम नए व्यापारियों को बाजार में उतरने देते हैं, तो वे वहां से खरीदें जहां मूल्य कम हों और वहां बेचें जहां मूल्य अधिक हों तो कीमतों में व्याप्त बड़े अन्तर समाप्त हो जाएंगे। तो महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि बाजार में नए व्यापारी और किसान क्यों नहीं उतरते। हालांकि इस समय इसका ठोस जवाब देना संभव नहीं है, ऐसा प्रतीत होता है कि बाजार में उनके प्रवेश पर रोक लगी है, जो केन्द्र और राज्य सरकारों के नियमों और विनियमों तथा वर्तमान व्यापारियों द्वारा जानबूझकर उनके बाजार प्रवेश में पैदा की गई अड़चनों के कारण हैं। यह बहस का मुद्दा है कि हमारा कृषि उत्पाद विपणन समिति (एपीएमसी) अधिनियम, प्रमुख मंडियों के माध्यम से व्यापार करने के लिए अनुमत व्यापारियों को प्रतिबंधित करके मूल्यों में हेराफेरी को सुसाध्य बनाता है। साथ ही व्यापारी को अपनी आपूर्ति शहर तक लाने के लिए जिन विभिन्न पथकरों और जांच-पड़ताल इत्यादि का सामना करना पड़ता है, उसके कारण छोटे, नए व्यापारियों और किसानों को अपने उत्पादों को खुदरा दुकानों तक पहुंचाना कठिन हो जाता है। यह भी विश्वास किया जाता है कि नए व्यापारियों को वर्तमान व्यापारियों द्वारा रोका जाता है। यदि ऐसा सिद्ध हो जाता है तो इस प्रकार की परिपाटियों को समाप्त करने के लिए प्रतिस्पर्द्धा अधिनियम 2002 की धारा 3 का सहारा लिया जा सकता है।

2.16 फार्म गेट और खुदरा मूल्यों के बीच इस फासले को कम करने का एक दूसरा और तेज तरीका यह है कि आधुनिक आपूर्ति श्रृंखला प्रबन्धन प्रणालियों और खुदरा विक्रेताओं को इस प्रक्रिया में शामिल किया जाए। इसमें बहुत सा नया ज्ञान-विज्ञान शामिल होगा। ऐसा करने के लिए त्वरित उपाय है-भारत में बहु-उत्पाद खुदरा व्यापार में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (एफडीआई) किए जाने की अनुमति देना। हमें निश्चित रूप से एक विनियामक संरचना की आवश्यकता होगी जिसके अन्तर्गत ऐसी विदेशी कंपनियों को काम करना होगा, हालांकि ही यदि यह तर्क दिया जाएगा कि बड़े संगठित क्षेत्र की फर्में देश के न्यास-रोधी कानूनों का उल्लंघन करने के प्रति अधिक सावधान रहेंगी। खैर, हम एक ऐसे मोड़ पर हैं जहां बहु-उत्पाद खुदरा बाजार में एफडीआई के आगमन पर विचार करना अच्छा होगा। इससे किसान और अधिक कीमत पाने और उपभोक्ता कम भुगतान करने में समर्थ हो पाएंगे। पहले कदम के रूप में हम प्रत्येक बड़े शहर में कुछेक दुकानों को अंतरराष्ट्रीय बहु-उत्पाद खुदरा व्यापारियों के लिए सीमित करने पर विचार कर सकते हैं। इससे बाजार पर उनके पूर्ण नियंत्रण करने पर रोक लगेगी और साथ ही मूल्यों पर एक ऊपरी सीमा तय हो जाएगी जो अन्य खुदरा व्यापारी अपने उत्पादों के लिए वसूलेंगे। इस मोर्चे पर प्राप्त सफलता पर निर्भर करते हुए बाजार को एफडीआई हेतु और खोला जा सकता है।

2.17 पिछले पैराग्राफों में जिन नीतिगत परिवर्तनों पर चर्चा की गई थी, उनसे हमारी खाद्य सुपुर्दगी और वितरण प्रणाली में सुधार हो सकता है और उपभोक्ताओं को बड़े फायदे हो सकते हैं। यहां तक कि उनकी वजह से हमेशा के लिए खुदरा मूल्य कम हो सकते हैं जिसका भुगतान उपभोक्ता करता है। लेकिन यह अकेले ही दीर्घावधिक मुद्रास्फीति, जिसका अर्थ है समग्र रूप से निरंतर मूल्य वृद्धि, के जोखिम को खत्म नहीं करेगा। सतत् मुद्रास्फीति अंशतः विकास और वित्तीय समावेशन का एक परिणाम है। जैसेकि पहले भी चर्चा की गई थी अधिक से अधिक लोगों द्वारा बैंकों और म्यूचुअल फंडों में अपनी बचत को रखने से, मुद्रा वृद्धि करने में और राजकोषीय घाटा उठाने में आरबीआई और सरकार की भूमिका में कमी हो सकती है। जिस घाटे से पहले मंहगाई नहीं होती थी, अब हो सकती है क्योंकि आम नागरिक अपना पैसा संचलन में डाल रहे हैं। अर्थशास्त्र की भाषा में मुद्रा के संचलन की रफ्तार में स्थिर वृद्धि हो सकती है। दुर्भाग्यवश, ऐसे कोई जाने माने फार्मूले नहीं हैं कि हम जान सकें कि इस संचलन की रफ्तार में आई तेजी का सामना करने के लिए नकदी और घाटे के लिए कितनी कटौती करें। इसका पता प्रयोग-परीक्षण करके ही चलेगा। इस वर्ष मुद्रास्फीति में हुई निरपेक्ष गिरावट से पता चलता है कि आरबीआई और सरकार द्वारा उठाए गए कदम सही दिशा में रहे हैं।

2.18 आज मुद्रास्फीति का एक दूसरा नया आयाम है जो इसे किसी भी एक राष्ट्र के पूर्ण नियंत्रण से परे रख देता है। यह है वैश्वीकरण। जैसे-जैसे अर्थव्यवस्थाओं के बीच अवरोध कम होते हैं और राष्ट्रों के बीच वस्तुओं, सेवाओं और पूंजी का प्रवाह अधिक सहजता से होता है, तब हरेक देश के मौद्रिक प्राधिकरण की स्वाभाविक प्रवृत्ति यह होती है कि वह पहले वाली प्रभावशीलता खो देता है। इसी तरह अब एक देश की मौद्रिक नीति पर अन्य देशों का अधिक प्रभाव है। पहले के समय में, जब एक देश अपनी पूंजी आपूर्ति को बढ़ाता था, तो उससे उस राष्ट्र में मांग में वृद्धि होती थी जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन में बढ़ोतरी और मूल्यों पर कुछ ऊर्ध्वमुखी दबाव पड़ता था। आज यह संभव है कि नव-सृजित धन देश से बाहर अन्य देशों में जाए और वहां मांग बढ़ाए, उत्पादन को बढ़ाए लेकिन साथ स्फीतिकारी दबाव भी पैदा करे। बहुत पहले यह समझ लिया गया था कि एक अर्थव्यवस्था में मुद्रा-सृजन के अधिकारों से युक्त एक से अधिक केंद्रीय बैंक होने से अस्थिरता पैदा हो सकती है। वर्ष 1694 में बैंक ऑफ इंग्लैण्ड की स्थापना से शुरूआत करते हुए, धीरे-धीरे यह प्रथा बन गई कि एक अर्थव्यवस्था के लिए एक केंद्रीय बैंक हो। वैश्वीकरण और राष्ट्रों के बीच सीमाओं के धूमिल पड़ने के चलते वैश्विक अर्थव्यवस्था धीरे-धीरे एकल अर्थव्यवस्था की ओर जा रही है। लेकिन, चूंकि हर राष्ट्र का एक केंद्रीय बैंक है, हम अनचाहे ही उसी उलझन की ओर लौट रहे हैं जिससे कभी बच कर निकल आए थे, अर्थात् एकल अर्थव्यवस्था में मुद्रा सृजन के अनेकानेक प्राधिकरण। इसके परिणामस्वरूप अस्थिरतावादी मुद्रा-स्पर्धाएं उभरी हैं और संभवत: यह उभरती अर्थव्यवस्थाओं में हाल में हुई मुद्रास्फीति की वृद्धि के पीछे एक वजह हो सकती है (देखें सारणी 2.1)।

सारणी 2.1 : पिछले वर्ष में विभिन्न देशों में मुद्रास्फीति

	मुद्रास्फीति		खाद्य मुद्रास्फीति	
	एक वर्ष पूर्व	2010	एक वर्ष पूर्व	2010
अर्जेन्टीना	7.1	11.0 *	4.7	15.8 *
ब्राज़ील	4.3	5.9 **	3.3	9.2 *
चीन	0.6	5.1 *	3.2	11.7 *
मिस्र	10.7	11.6 ***	17.4	21.9 ***
भारत	13.5	8.3 *	17.6	5.4 *
इंडोनेशिया	2.8	7.0 **	4.7	13.2 $
ईरान	7.4	12.5 *	6.6	12.1 ***
पाकिस्तान	10.5	15.5 **	7.5	20.1 @
फिलीपीन्स	4.3	3.0 **	2.2	3.2 ***
रूस	8.8	8.8 **	-	-
थाईलैंड	3.5	3.0 **	0.8	6.6 ***
तुर्की	6.5	6.4 **	9.3	7.0 **
यूक्रेन	12.3	9.1 **	7.6	13.1 @
वियतनाम	6.5	11.8 **	-	-
उरूग्वे	5.9	6.9 **	4.6	10.1 @

स्रोत : अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन (आई एल ओ), सांख्यिकी विभाग, विश्व बैंक, चीन का राष्ट्रीय सांख्यिकी ब्यूरो
टिप्पणी : *नवंबर, **दिसंबर, * सितंबर, @अक्तूबर, $अगस्त**

2.19 समय आ गया है कि विश्व की प्रमुख अर्थव्यवस्थाएं जी-20 जैसी उपयुक्त अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों के जरिए एकजुट हों ताकि इस समस्या का समाधान खोजा जा सके और प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण अर्थव्यवस्थाओं से उनकी मौद्रिक और राजकोषीय नीतियों में अधिक समन्वय लाने की कोशिश की जाए और इसे हासिल भी किया जाए। वैश्विक अर्थव्यवस्था में परेशान कर देने वाली कुछ विशेषताएं दिखाई देने लगी हैं जिन पर ध्यान दिए जाने की जरूरत है। अभी वैश्विक स्तर पर मुद्रास्फीति जनित गतिहीनता का एक रूप व्याप्त है। लेकिन मुद्रास्फीति जनित गतिहीनता की मिली-जुली मानक स्थिति, जहां एक ही अर्थव्यवस्था में गतिहीनता और मुद्रास्फीति साथ-साथ व्याप्त होते हैं, के विपरीत वैश्विक अर्थव्यवस्था की विशेषता खण्डश: मुद्रास्फीति जनित गतिहीनता की होती है-कुछ राष्ट्रों में गतिहीनता, कुछ में मुद्रास्फीति। यह संभवत: विश्व के अधिकाधिक सीमाहीन बनते जाने का परिणाम है। ऐसे विश्व में धन का सृजन करना चपटी सतह पर पानी उड़ेलने जैसा है। पानी भले ही कहीं भी उड़ेला जाए, वह आखिरकार एक ही स्थान पर इकट्ठा होता जाता है, और इस मामले में उन स्थानों पर विकास और कीमतों को प्रेरित करने जैसा है, लेकिन ज़रूरी नहीं कि जहां धन सृजित किया गया वहीं अर्थव्यवस्था भी प्रेरित हुई हो।

लघु वित्त, वित्तीय उत्पाद और वित्तीय समावेशन

2.20 पिछले वर्ष आर्थिक समावेशन को मजबूत करने के लिए बहुत प्रयास किया गया है। ऐसा होना भी चाहिए। सरकार की आर्थिक नीति के मूल घटक नामश: ''समावेशी विकास'' में से देश ने 'विकास' के मोर्चे पर तो बढ़िया काम कर दिखाया है लेकिन ''समावेशन'' के मोर्चे पर और मेहनत करने की जरूरत है। इस मोर्चे पर बेहतर काम करने के लिए हमें इस लक्ष्य को अधिक स्पष्ट रूप से परिभाषित करना होगा और फिर इसे हासिल करने की नीतियां कार्यान्वित करनी होंगी। पिछले वर्ष की आर्थिक समीक्षा में यह तर्क दिया गया था कि समावेशन के लक्ष्य को निश्चित रूप देने का एक तरीका यह हो सकता है कि जनसंख्या के निचले बीस प्रतिशत हिस्से के निष्पादन के संदर्भ में अर्थव्यवस्था के निष्पादन का मूल्यांकन किया जाए। इस तरह, समग्र प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि को लक्ष्य मानने की बजाय, हमें जनसंख्या के निचले 20 प्रतिशत (जिसे क्विन्टाइल आय कहा जाता है) की प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि दर बढ़ाने का लक्ष्य रखना चाहिए। ऐसी परिभाषा से विकास और साम्यता के दोनों अलग-अलग दिशाओं में जाने की सामान्य भूल से बचा जा सकेगा। इतनी स्पष्ट परिभाषा के बाद भी सवाल यह रहता है कि इस लक्ष्य को कैसे बेहतरीन ढंग से हासिल किया जाए? हाशिये पर खड़ी आबादी के स्तर को बढ़ाने की नीति के कौन से घटक होने चाहिए?

2.21 इस सरकार की राय यह थी कि समावेशन के बृहत मुद्दे की केंद्रीय और एक तरह से प्रमुख विशेषता है वित्तीय समावेशन। ऐसे समावेशन को हासिल करने के लिए भारत के बैंकिंग क्षेत्र को विस्तृत करने की योजनाएं हैं, नए वित्तीय उत्पादों का सृजन करना

और आधुनिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग करके गरीबों को ब्याज अर्जित करने वाले खातों में अपनी बचतों को रखने में समर्थ बनाना। इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सर्वाधिक महत्वाकांक्षी योजनाओं में से एक योजना है स्वाभिमान कार्यक्रम जो रंगराजन समिति (वित्तीय समावेशन संबंधी समिति) में प्रस्तावित और तैयार किए गए वित्तीय समावेशन की कल्पना से प्रेरित है। 10 फरवरी 2011 को शुरू की गई स्वाभिमान एक नवपरिवर्तन योजना है जो गांव के गरीब लोगों को उनके दरवाजे पर बैंक की सुविधा मुहैया कराती है बजाय इसके कि वे लोग बैंक की तलाश में जाएं। उद्देश्य यह है कि इलेक्ट्रानिक हस्त-चालित मशीनी सुविधा, जिनसे बैंक ग्राहकों के बायो मार्कर की पहचान की जा सकती है, से लैस सुविधाकर्ता अथवा बैंक साथी (जो स्थानीय व्यापारी हो सकते हैं) के जरिए कारोबार किया जाए। ग्राहक ईंट-गारे से बनी नजदीकी बैंक शाखा में गए बिना बैंक साथी के पास सीधे पैसा जमा करा सकते हैं और जमा पैसा निकाल सकते हैं। यह कार्यक्रम ''आधार'' का प्रयोग करेगा जो लोगों को भारत के किसी भी हिस्से में अपनी पहचान स्थापित करना संभव बनाएगा। बैंकिंग क्षेत्र में इन नवपरिवर्तनों के तरीकों के साथ सूचना प्रौद्योगिकी में भारत की मजबूती के संयोजन से, स्वाभिमान योजना के विकास और समावेशन के लिए प्रमुख प्रेरणा-स्रोत बन जाने की उम्मीद है।

2.22 वित्तीय समावेशन का दूसरा घटक जो स्वाभिमान से लाभान्वित हो सकता है, वह है लघु वित्त की पहुंच का विस्तार। लघु वित्त गरीबों का सशक्तिकरण कर सकता है ताकि वे उपकार पर आश्रित रहने की बजाय आत्मनिर्भर हों और अपनी आमदनी को बढ़ता देखें। लघु वित्त के क्षेत्र में यह वर्ष असाधारण घटनाक्रम का वर्ष रहा है। यह क्षेत्र तेज़ी से विकसित हुआ है लेकिन यह विवादों में भी घिरा रहा है। लघु वित्त संस्था (एमएफआई) अनेक रूप ले सकती है। यह गैर सरकारी संगठन (एनजीओ), भारतीय कंपनी अधिनियम, 1956 के अंतर्गत निगमित निर्लाभ गैर-बैंकिंग वित्त कंपनी (एनबीएफसी) अथवा लाभ कमाने वाली एनबीएफसी हो सकती है। भारतीय रिज़र्व बैंक के दिनांक 18 फरवरी 2000 के दिशानिर्देशों के अनुरूप, लघु वित्त संस्थाएं बैंकों से थोक ऋण ले रही हैं और छोटे उधारकर्ताओं को आगे उधार दे रही हैं। लघु वित्त संस्थाएं खुदरा जमाराशियां नहीं ले सकतीं और इसी अर्थ में एनबीएफसी की श्रेणी में आती हैं। इस क्षेत्र का विकास घातांकी तौर पर हुआ है और 31 मार्च 2010 की स्थिति के अनुसार, राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) के पास दाखिल विवरणियों के आधार पर हमें मालूम हुआ है कि 1659 लघु वित्त संस्थाएं थीं जो बैंकिंग प्रणाली से 13,955 करोड़ रुपये का कुल ऋण ले चुकी हैं। अग्रणी एमएफआई नामशः एसकेएस माइक्रो फाइनेंस की आरंभिक सार्वजनिक पेशकश (आईपीओ) की सफलता के बाद अब यह क्षेत्र पूर्ण विकसित हुआ प्रतीत होता है। लेकिन 2010-11 में यह क्षेत्र मुश्किल में पड़ गया जब लघु वित्त संस्थाओं द्वारा ऋणों की वसूली के लिए अनुचित व्यवहार अपनाने और इन व्यवहारों के कारण कुछ किसानों द्वारा आत्महत्या करने की रिपोर्टें आईं।

2.23 इन घटनाओं ने लघु वित्त क्षेत्र को दोराहे पर ला खड़ा किया है। एमएफआई को विनियमित करने में यह याद रखना चाहिए कि उन्होंने गरीबों को भारत के वित्तीय क्षेत्र की मुख्यधारा में लाने और किसानों को उपयोगी निवेश करने तथा सीमान्त कामगारों को छोटे स्व-रोजगार युक्त उद्यम स्थापित करने में समर्थ बनाने में मुख्य भूमिका निभाई है। भारत भर में ऐसे लगभग 30 मिलियन लोग हैं जो एमएफआई के उधारों के लाभार्थी रहे हैं। ऐसे सबूत जरूर हैं कि इनमें से कुछ लोगों को ऋणों की अदायगी करने के लिए धमकियां मिलीं। ऐसे व्यवहार पर रोक लगाई जानी चाहिए। लेकिन, इस पर प्रतिक्रियास्वरूप व्यापक ऋणमाफी की घोषणा करने ओर किसानों को बड़े पैमाने पर ऋण अदायगी में चूक करने में बढ़ावा देने से लाभ की बजाय अधिक नुकसान ही होगा। ऐसे व्यवहार से एमएफआई क्षेत्र समाप्त हो जाएगा क्योंकि कोई भी एमएफआई, चाहे वह लाभ अर्जक हो अथवा निर्लाभ एनजीओ, यह जानते हुए कि ऋणों की वसूली नहीं की जा सकती, ऋण नहीं देना चाहेगा। हालांकि हमें यह स्वीकारना चाहिए कि विशेष स्थितियों में उधारकर्ताओं को स्वयं को दिवालिया घोषित करने और अदायगी न करने का अधिकार है, फिर भी हमें एक ऐसी सक्षम विनियामक संरचना की जरूरत है जो उधारकर्ताओं की रक्षा करे तथा साथ ही इस क्षेत्र को फलने-फूलने भी दे। इसी बात को ध्यान में रखते हुए भारतीय रिजर्व बैंक ने लघु वित्त क्षेत्र का अध्ययन करने और उसके संबंध में सलाह देने के लिए वाई.एच. मालेगाम की अध्यक्षता में एक समिति गठित की है (देखें बॉक्स 2.2)। निःसंदेह, यह रिपोर्ट परिचर्चा, विवाद और विश्लेषण को जन्म देगी। इसके आलोक में, इस महत्वपूर्ण क्षेत्र को विनियमित करते समय ध्यान में रखे जाने वाले कुछ सिद्धांतों का ज़िक्र करना लाभप्रद होगा।

2.24 श्रेष्ठ वित्त पोषण की प्रणाली का केन्द्रीय सिद्धांत है पारदर्शी संविदा। इसलिए लघु वित्त क्षेत्र के लिए विनियामक प्रणाली तैयार करने में पहला और महत्वपूर्ण सिद्धांत यह अपेक्षा पूरी करने का है कि ऋणदाता एमएफआई उधारकर्ता को ऋण की शर्तें और निबंधन स्पष्ट करे। उदाहरणार्थ यह सर्वविदित है कि लोग अक्सर चक्रवृद्धि ब्याज दर का अर्थ नहीं समझ पाते। एक गरीब किसान ने यह बताया कि उसे प्रतिमाह 10 प्रतिशत की ब्याज दर से भुगतान करना है जिसका मतलब वह यह लगाता है कि उसे एक वर्ष में 120 प्रतिशत की ब्याज दर से भुगतान करना होगा। लेकिन, यदि 10 प्रतिशत की ब्याज दर को चक्रवृद्धि दर में बदलें तो यह एक वर्ष में 214 प्रतिशत ब्याज बैठती है। इसे ठीक से न समझने से उधार लेने वाले को भारी हानि उठानी पड़ेगी तथा ऋणदाता बड़ा और अनुचित लाभ उठाएगा। हमने इस तरह की घटनाएं संयुक्त राज्य अमरीका जैसी विकसित अर्थव्यवस्थाओं में भी देखी हैं जहां सब-प्राइम आवास उधारकर्ताओं ने उन शर्तों को समझे बिना जिन पर वे हस्ताक्षर कर रहे थे, ऋण ले लिए थे। सरकार को यह सुनिश्चित करने के लिए उपाय करने होंगे कि एमएफआई उधारकर्ताओं के लिए संविदा की शर्तें पारदर्शी बनाए। यह ब्याज दरों पर सीमा तय करने और संविदा की अन्य शर्तों पर अन्य प्रतिबंध लगाने से अधिक महत्वपूर्ण है। इस बात से इनकार नहीं है कि हमें शर्तों पर कुछ बंधन लगाने होंगे। लेकिन हमें संविदा की शर्तों का दायरा तय करने से पहले इसका अर्थशास्त्र समझ लेना जरूरी है।

बॉक्स 2.2 : एमएफआई क्षेत्र के मुद्दे और सरोकार: भारतीय रिजर्व बैंक के केन्द्रीय निदेशक मंडल की उप-समिति—मालेगाम समिति की रिपोर्ट के अंश

मुख्य सिफारिशें*

एमएफआई का श्रेणीकरण

- एनबीएफसी-एमएफआई के रूप में नामोद्दिष्ट करने के लिए एनबीएफसी की पृथक श्रेणी का सृजन;
- एनबीएफसी-एमएफआई ऐसी कंपनियां होनी चाहिए जो मुख्यत: कम आय वाले उन उधारकर्ताओं को वित्त सेवाएं मुहैया करती हों जिनकी कुल आस्तियों (नकद और मुद्रा बाजार लिखतों को छोड़कर) का कम से कम 90 प्रतिशत पात्र आस्तियों के रूप में हो;

ऋण की शर्तें: उधारकर्ता, मात्रा और ब्याज दर

- उधारकर्ता केवल एक एसएचजी अथवा संयुक्त देयता समूह का सदस्य हो सकता है;
- उधारकर्ताओं की वार्षिक पारिवारिक आय पर 50,000 रुपये की सीमा की सिफारिश की गई है;
- एकल उधारकर्ता को दिए जाने वाले ऋण पर व्यक्तिगत उच्चतम सीमा 25,000 रखे जाने की सिफारिश की गई है;
- ऋण कम राशि के होने चाहिए, जिनमें बैंक ऋणों के मुकाबले निरंतर अदायगियां की जाएं;
- उधारकर्ताओं पर लगाया जाने वाला ब्याज 100 करोड़ रुपये के ऋण पोर्टफोलियो वाले एमएफआई हेतु 10 प्रतिशत और छोटे एमएफआई के लिए 12 प्रतिशत के 'मार्जिन कैप' के अध्यधीन हो;
- ऋणों पर समग्र ब्याज दर की उच्चतम सीमा 24 प्रतिशत रहेगी;
- ऋण की अवधि उसकी मात्रा के अनुसार होगी;
- एमएफआई द्वारा मुहैया कराई जाने वाली 'अन्य सेवाओं' की सीमा पर प्रतिबंध लगाए जाने की सिफारिश की गई है;
- दो से अधिक एमएफआई एक ही उधारकर्ता को ऋण नहीं दे सकती।

संसाधन, पूंजी संरचना और आपूर्ति

- एनबीएफसी-एमएफआई को मिलने वाला वाणिज्यिक बैंक का ऋण 'प्राथमिकता-ऋण' के रूप में पात्र होगा;
- एनबीएफसी-एमएफआई के लिए 15 करोड़ रुपए का न्यूनतम निवल मूल्य;
- 15 प्रतिशत का पूंजी पर्याप्तता अनुपात;
- सभी निवल स्वामित्वाधीन निधियां टीयर I पूंजी के रूप में होनी चाहिए।
- एमएफआई को तरजीही पूंजी (जिसमें कूपन दर पर लगने वाली उच्चतम सीमा को टीयर II पूंजी के भाग के रूप में माना जाएगा जो पूंजी पर्याप्तता मानदंडों के अध्यधीन होगा) जारी करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।

उपभोक्ता संरक्षण, अभिशासन संहिता और विनियामक मुद्दे

- भारतीय रिजर्व बैंक एक मसौदा ग्राहक संरक्षण संहिता तैयार करेगा;
- शिकायत निवारण तंत्र स्थापित किया जाएगा।
- एमएफआई कारपोरेट अभिशासन की संहिता अपनाएगा;
- जबर्दस्ती वसूली करने की पद्धति से बचने की जिम्मेदारी एमएफआई पर छोड़कर दी जाएगी;
- क्रेडिट सूचना ब्यूरो स्थापित किया जाएगा;
- एमएफआई के स्थल से परे और उसके स्थल पर जाकर पर्यवेक्षण के लिए भारतीय रिजर्व बैंक की जिम्मेदारी होनी चाहिए;
- सुझाए गए विनियमों के अनुपालन की निगरानी करने के लिए चार स्तंभीय दृष्टिकोण जिसमें एमएफआई, उद्योग संघ, बैंक और भारतीय रिजर्व बैंक शामिल हों;
- ब्याज मार्जिन की उच्चतम सीमा और अधिक विनियमन संबंधी सिफारिश को देखते हुए मुद्रा उधार अधिनियमों के प्रावधानों से एनबीएफसी-एफएफआई को छूट दी जानी चाहिए।

टिप्पणी : *यह सिफारिशों का पूर्ण पाठ न होकर केवल संक्षिप्त सार है।
स्रोत : एमएफआई क्षेत्र के मुद्दों और सरोकारों का अध्ययन करने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक के केन्द्रीय निदेशक मंडल की उप-समिति की रिपोर्ट, जनवरी, 2011

2.25 पहली नजर में एमएफआई द्वारा प्रतिवर्ष 24 प्रतिशत से 30 प्रतिशत की ब्याज दर लगाना लूट-खसोट लग सकता है क्योंकि शहर के बड़े उधारकर्ता अपेक्षाकृत बहुत कम ब्याज दरों पर धन प्राप्त करते हैं। लेकिन इस प्रतिक्रिया के विरुद्ध दो तर्क हैं। पहला, यह ध्यान में रखना होगा कि कई छोटे उधारकर्ताओं को ऋण देना कुछेक बड़े उधारकर्ताओं को ऋण देने की अपेक्षा कहीं अधिक महंगा पड़ता है। दूसरा, कई गरीब उधारकर्ताओं के लिए एमएफआई का विकल्प बैंक अथवा संगठित क्षेत्र की वित्तीय संस्था नहीं बल्कि

ग्रामीण साहूकार हैं और ऐसे साहूकार अक्सर ऐसी ब्याज दरें लगाते हैं जो वार्षिक आधार पर 100 प्रतिशत अथवा यहां तक कि 200 प्रतिशत हो सकती हैं। इसलिए एमएफआई द्वारा लगाई जा सकने वाली अधिकतम ब्याज दर पर सख्त सीमा निर्धारण कुछ निर्धनतम और बैंक सेवा से अछूते उधारकर्ताओं को भयंकर लूट-खसोट की ओर ले जाएगा।

2.26 तो क्या फिर यह ब्याज दर पर सीमा लगाने का मामला बनता है अथवा हमें सिर्फ संविदा की शर्तों की पारदर्शिता पर जोर देना चाहिए, शर्तें चाहे कुछ भी हों? अधिकतर औद्योगीकृत देशों जैसे संयुक्त राज्य अमरीका में भी सूदखोरी कानून है जो ऋणदाता द्वारा लगाए जा सकने वाली ब्याज दर पर अधिकतम सीमा लगाते हैं। व्यावहारिक अर्थशास्त्र में किया गया हाल का अनुसंधान यह दर्शाता है कि मनुष्य में अंतर-अल्पकालिक निर्णय लेने में गलती करने की प्रवृत्ति होती है। समय पर ध्यान न देने की पुरानी धारणा के अलावा, लोगों में भविष्य में उनके हाथ लगने वाले फायदे की अपेक्षा मौजूदा समय में प्राप्त लाभ को अत्यधिक मूल्यवान समझने की अतिरिक्त प्रवृत्ति होती है। इसके अलावा, लोगों की खास आदत यह होती है कि ये उस रफ्तार को कम आंकते हैं जिस पर चक्रवृद्धि ब्याज दरें समय बीतने पर ऋण अदायगी का भार बढ़ाती जाती हैं। दूसरे शब्दों में, अंतर-अल्पकालिक निर्णय अक्सर इस तरह लिया जाता है जो पूरी तरह व्यक्ति के विवेकसम्मत हित के अनुरूप नहीं होता। यह इस संभावित दृष्टिकोण को जन्म देता है कि जब कोई व्यक्ति ऐसी संविदा पर हस्ताक्षर करता है जिसमें ब्याज दर बहुत अधिक है, तो यह अपने आप में दर्शाता है कि उस व्यक्ति ने ऋण अदायगी के भार का गलत आकलन किया है। यह उपभोक्ता के अपने सच्चे हित के लिए उसकी प्रभुसत्तात्मकता को कम करने के लिए एक तर्क हो सकता है। इसी कारण से ब्याज दरों पर उच्चतम सीमा लगाने सहित ऋण करार में निहित शर्तों और निबंधनों पर कुछ सीमाएं निर्धारित करने का मामला हो सकता है। तथापि, इनका सटीक ब्यौरा तय करने के लिए हमें पूर्व उल्लिखित दो कारकों को ध्यान में रखना होगा, नामशः यह कि लघु ऋण ऋणदाता के लिए महंगा होता है तथा कई गरीब उधारकर्ताओं के लिए एमएफआई का विकल्प है–अनौपचारिक साहूकार से धन लेना जिसकी ब्याज दर कहीं अधिक होती है।

2.27 ये वैचारिक मुद्दे कुछ ऐसे मामलों से जुड़े हैं जो संगठित वित्त के अधिकतर प्रश्नों से संबंधित हैं। अमरीका में सब-प्राइम आवासीय बंधक बाजार से शुरू होने वाले और विश्व के अन्य भागों में फैल जाने वाले वित्तीय संकट ने नए वित्तीय उत्पादों और संरचित वित्त के बारे में महत्वपूर्ण प्रश्न उठाए हैं। टीज़र ऋण (समायोज्य दर वाला बंधक ऋण) की भी आलोचना हुई है जिनमें आरंभिक अदायगियां कम होती हैं तथा जो समय बीतने पर बढ़ती हुई बड़ी अदायगियों का रूप ले लेती हैं। संपार्श्विकृत ऋण देनदारियां (सीडीओ) भी आलोचना के घेरे में आई हैं, जिनमें विविध जोखिम प्रोफाइल के विविध बंधक पत्रों (मॉर्टगेज) को समूहबद्ध करके नई वित्तीय योजनाएं तैयार की जाती हैं और अन्य वित्त एवं निवेश कंपनियों को खण्डों में बेची जाती है। यह तर्क दिया जा सकता है कि इन सीडीओ ने ''रेटिंग देने में तेजी'' पैदा की क्योंकि इन बंधक पत्रों को मिश्रित करने और संतुलित करने में बैंकों ने यह सुनिश्चित किया कि कतिपय रेटिंग श्रेणी प्राप्त करने वाला ऐसा प्रत्येक उत्पाद उस श्रेणी की सिर्फ सीमा तक ही पहुंचे। पूर्ववर्ती समय में ''स्टैण्डर्ड एण्ड पुअर्ज'' अथवा फिच जैसी रेटिंग एजेंसियां पूरी कम्पनियों या राष्ट्रों तक की भी रेटिंग करती थीं। इसलिए जब किसी कंपनी द्वारा जारी ऋण को AA+ रेटिंग दी जाती थी, तो ऋणदाता जानता था कि इस कंपनी की कोटि रेटिंग AA+से लेकर AAA से ठीक नीचे के अंतराल में कहीं पर है। सीडीओ के चलन में आ जाने के बाद, निवेश बैंकों ने ऐसी परिसंपत्तियां सृजित करनी शुरू कर दीं जिनका लक्ष्य जानबूझकर एक निश्चित रेटिंग रखा जाना था। चूंकि इन सीडीओ की मांग रेटिंग पर निर्भर करती है, इसलिए ऐसी श्रृंखलाएं सृजित करना बिल्कुल लाभकर नहीं था जो ''रेटिंग अंतराल'' के मध्य या ऊपरी सीमा में हों। दूसरे शब्दों में, ये नई प्रतिभूतियां अक्सर अनिवार्यतः प्रत्येक अंतराल के निचले कट-ऑफ पर समूहबद्ध थीं। यह बहस का मुद्दा है कि इन परिसंपत्तियों को खरीदने वाले अनेक एजेंटों ने इस परिवर्तन पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया था जो संरचित वित्त-व्यवस्था के परिणामस्वरूप पैदा हो चुका था। वे AA+ परिसंपत्तियों को ऐसी परिसंपत्ति मानने के अभ्यस्त हो चुके थे जो AA+ से शुरू होकर AAA की शुरूआत के बीच कहीं हो। लेकिन सीडीओ के आगमन के चलते अब ऐसा नहीं था। प्रत्येक रेट श्रेणी में परिसंपत्तियों की औसत कोटि अनिवार्यतया अन्तराल की निचली सीमा में थी। दूसरे शब्दों में, जिस तरह कुछ विश्वविद्यालयों में ''ग्रेडिंग में तेजी'' रही है, यह ''रेटिंग में तेजी'' की स्थिति थी। बिल्कुल वैसे ही जैसे ''ग्रेड में तेजी'' के आरंभिक दिनों में हुआ, इन परिसंपत्तियों के खरीदार कुछ हद तक ठगे गए। वित्तीय विश्व में प्रत्येक परिसंपत्ति के संबंध में इस प्रकार की छोटी सी गलती बढ़कर बड़ी गलती बन सकती है और बाजार में ऋणदाताओं के बीच पेचीदा अन्तः निर्भरता के चलते, यह प्रभाव भयावह रूप ले सकता है, जैसाकि 2007 और 2008 में हुआ। बॉक्स 2.3 में रेटिंग देने में तेजी के कुछ अन्य कारणों पर चर्चा की गई है।

2.28 इस स्थिति से निपटने का एक तरीका है ग्रेडिंग में अधिक गहनता जैसाकि पूर्वी एशियाई राष्ट्रों के लिए विशेष रूप से तैयार की गई स्टैण्डर्ड एण्ड पुअर्ज़ की रेटिंग प्रणाली करती है। लेकिन भारत के लिए इस समय अधिक प्रासंगिक मामला टीजर ऋणों जैसे नए वित्तीय उत्पादों की प्रास्थिति का है। शब्दावली इतनी दोषपूर्ण हो चुकी है कि किसी तटस्थ शब्द का भी कोई महत्व नहीं है। हम यहां उन ऋणों का श्रेणीवार ऋण (टेरेस्ड लोन) के रूप में उल्लेख करेंगे जिनमें समय बीतने पर मासिक अदायगी की किश्त बढ़ती है। अधिकतर औद्योगीकृत देशों के विपरीत, भारत ने श्रेणीवार ऋणों में उल्लेखनीय सफलता हासिल की है। उदाहरण के लिए, भारतीय स्टेट बैंक दो अलग-अलग टैरेस्ड लोन उत्पाद लेकर आया-फरवरी 2009 में हैपी होम लोन और अगस्त 2009 में ईज़ी एंड एडवान्टेज होम लोन। इन दोनों ऋणों पर नियत ब्याज दरें हैं और ये आरंभिक वर्षों में बाजार दर से कम है। हैपी होम लोन के मामले में यह पहले 12 महीनों के लिए नियत है और ईजी एण्ड एडवान्टेज होम लोन के मामले में ब्याज को तीन वर्षों तक स्थिर

बॉक्स 2.3 : प्रतिभूतियां, परिपक्वता और उधार देने में तेजी

सभी कारपोरेट बाण्डों का एक प्रतिशत से कुछ कम हिस्सा ही AAA की श्रेणी में रखा जाता है। 2007-09 के वित्तीय ध्वंस से पहले उधार देने में आई तेजी के दौरान, सभी परिसंपत्ति समर्थित प्रतिभूतियों के लगभग 60 प्रतिशत हिस्से को AAA की श्रेणी में रखा गया। इन प्रतिभूतियों को इतने ऊंचे दर्जे की श्रेणी में रखने के पीछे क्या जादू चल रहा था? जैसाकि अध्याय में चर्चा की गई है, बंधक पत्रों को मिलाजुला कर और संतुलित करके पैकेज बनाने की समर्थता रेटिंग में इस तेजी का कारण हो सकती है। लेकिन इसके अन्य कारण भी हैं। अलग-अलग परिपक्वता की प्रतिभूतियों को सृजित करने की प्रचलित परिपाटी भी इसमें योगदान कर सकती है।

मान लें कि एक बैंक ने 100-100 रुपये के दो बंधक-पत्र बेचे हैं और मान लें यदि इन बंधक-पत्रों में से प्रत्येक को एक में से आठवें हिस्से के बराबर चूक का जोखिम है। आगे, यह भी माना जाए कि इन दो बंधक-पत्रों के जोखिम सहसंबंधित नहीं हैं। अब यह मान लें कि एक चतुर वित्त परामर्शदाता बैंक को यह सलाह देता है कि इन दोनों बंधक पत्रों को एक साथ रखे और 100-100 रुपए की दो नई प्रतिभूतियां बनाए और इन्हें दो क्रेताओं को बेच दे। लेकिन इन दोनों प्रतिभूतियों की परिपक्वता भिन्न-भिन्न स्तर की होगी। यदि इन बंधक पत्रों में से किसी ने भी चूक की तो कनिष्ठ स्तर की प्रतिभूति चूक को पकड़ लेगी। वरिष्ठ स्तर की प्रतिभूति में चूक सिर्फ तभी होगी यदि दोनों बंधक-पत्र चूक करें। यह नोट किया जाए कि कनिष्ठ प्रतिभूति किसी एक मूल बंधक पत्र के मुकाबले थोड़ी कम स्तर की होती है क्योंकि चूक का जोखिम आठ में से दो हिस्से का है। दूसरी तरफ, वरिष्ठ प्रतिभूति बहुत बेहतर है क्योंकि यह मूल बंधक-पत्र के समान है लेकिन इसका जोखिम कम रहकर एक में से चौसठवें हिस्से तक रह गया है। संभाव्यता के कानूनों से गलत लाभ उठाने और बंधक पत्रों के कतिपय समूहों को बढ़ा-चढ़ाकर बताई गई रेटिंग श्रेणियों में डालने की विधि ही थी जो उधार देने में तेजी लाने का एक कारण थी। चूंकि मिश्रण और संतुलन से समग्र स्तर पर बुनियादी रूप से कुछ भी नहीं बदला है, इसलिए इसके बाद आने वाली वित्तीय मंदी अपरिहार्य थी।

संदर्भ : एम ब्रूनरमेयर (2009), डिसाइफरिंग दि लिक्विडिटी एण्ड क्रेडिट क्रंच 2007-2008, *जर्नल ऑफ इकोनॉमिक पर्सपेक्टिव्स* 23

आर जी राजन (2010), *फॉल्ट लाइन्स: हाऊ हिडन फ्रेक्चर्स स्टिल थ्रेटन दि वर्ल्ड इकोनॉमी, कोलिन्स बिजनेस*

रखा गया था और बाजार दर से कम रखा गया था। तत्पश्चात्, इन दरों के अधिक और अनियत ब्याज दरें होने की संभावना थी। इस पर बाजार की प्रतिक्रिया बहुत अच्छी थी। जनवरी, 2009 में 1499 करोड़ रुपए की समग्र कीमत के 18,780 ऋणों की पेशकश की गई। नवम्बर, 2009 तक इनकी संख्या बढ़कर 28492 हो गई जिनकी समग्र कीमत 3273 करोड़ रुपए थी। इनके संबंध में चूक के मामले नगण्य रहे हैं और समय से पूर्व समापन के मामले विरले ही थे। साथ ही, इन ऋणों ने समावेशन को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। लगभग 90 प्रतिशत आवास ऋण उधारकर्ता पहली बार घर खरीद रहे थे।

2.29 इन टेरेस्ड ऋणों की सफलता के पीछे दो कारक थे। पहला, अदायगी का तरीका। अमरीका में परंपरागत टीज़र ऋणों से जुड़े होने के बावजूद, भारत में ये ऋण सब प्राइम उधारकर्ताओं को नहीं दिए गए थे। ईजी एण्ड एडवान्टेज होम लोन के मामले में, उधारकर्ता की अदायगी की क्षमता और इसलिए पात्रता इस अनुमान के साथ आकलित की गई कि उस व्यक्ति को आरंभ से ही वह राशि अदा करनी होगी जो कि उसे असल में चौथे वर्ष से अदा करनी होती। दूसरे, संविदा को पारदर्शी बनाने के सभी प्रयास किए गए जिससे कि उधारकर्ता वास्तव में यह जान लें कि वह क्या कर रहा था। व्यावहारिक अर्थशास्त्र ने हमें जो सिखाया है उसके चलते हम जानते हैं कि यह हमेशा पर्याप्त नहीं होता, यह कि उधारकर्ता द्वारा हामी भर देने का अर्थ यह नहीं होता कि वह पूरी तरह समझ गया है कि वह क्या करने जा रहा है। तथापि, न सिर्फ विशेष रूप से सब-प्राइम उधारकर्ताओं को ये उत्पाद उपलब्ध न कराने बल्कि अदायगी की निश्चित क्षमता वाले उधारकर्ताओं को प्राप्त विकल्पों को बढ़ाने के निर्णय ने मुख्य भूमिका निभाई। यह तथ्य कि इसने आवास खरीदने वाले कई नए लोगों को इस बाजार में प्रवेश करने में समर्थ बनाया है, इस योजना के समावेशन की क्षमता को प्रतिबिंबित करता है, भले ही सब-प्राइम खण्ड को जानबूझकर इससे बाहर रखा गया था। इसी वजह से भारत के बंधक-पत्र बाजार स्थिर रह पाए। औद्योगीकृत देशों में ऐसे बाजार लड़खड़ा गए। मूल सबक स्पष्ट है। सामान्यत: बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को नई योजनाएं आरम्भ करने की स्वतंत्रता देना और उपभोक्ताओं एवं फर्मों के लिए उपलब्ध विकल्पों का विस्तार करना उचित है। इससे उद्यमशीलता बढ़ाई जा सकती है और आम नागरिक रहन सहन के स्तर को बेहतर कर सकता है जो अन्यथा संभव नहीं होता। आवश्यक प्रतिबन्ध यह होना चाहिए कि बैंक और गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियों (एनबीएफसी) को ऐसे उधारकर्ताओं को ऋण देने के लिए निरुत्साहित किया जाना चाहिए जो स्पष्ट रूप से ऐसे ऋण का बोझ उठाने की स्थिति में नहीं हैं। जहां तक इस प्रकार की योजनाओं पर प्रतिबन्ध लगाए जाने का संबंध है, इनका उपयोग कम से कम और न्यायोचित ढंग से किया जाना चाहिए।

पूंजी प्रवाह और भू-राजनीतिक विकल्प

2.30 इस वित्त वर्ष में भारत में आए समग्र पूंजी प्रवाह देश के इतिहास में अब तक सर्वाधिक रहे हैं। ऐसा मूलत: भारतीय अर्थव्यवस्था में हुई जबरदस्त प्रगति के परिणामस्वरूप विदेशी संस्थागत निवेशकों (एफआईआई) के जरिए आने वाले निधि संग्रह के कारण हुआ है और साथ ही बड़े औद्योगीकृत देशों में सामान्यत: प्रचलित कम ब्याज दरों और मुनाफों के कारण हुआ है। वित्त वर्ष के मध्य में 'मुद्रा प्रतिस्पर्धा' भी हुई थी जब चीन ने कथित रूप से अपनी विनिमय दर को अवमूल्यन स्तर पर धारित किया, इस पर अमरीका की प्रतिक्रिया हुई तथा उसका अपना धीमा विकास और अत्यधिक बेरोजगारी के साथ-साथ नकदी की

मात्रात्मक दृष्टि से व्यय में वृद्धि के दो दौरे चलाए गए और जापान ने विदेशी मुद्रा की खरीद और बाजार में येन जारी किए। इन सभी कदमों ने हमारी दिशा में धन का बड़ा प्रवाह करने में योगदान किया। आरंभ में यह भारत के लिए चिन्ता का विषय था। लेकिन, वर्ष के दौरान रुपए की *सांकेतिक* विनिमय दर में और उल्लेखनीय वृद्धि हुई प्रतीत नहीं होती। यह भारत की बढ़ती ताकत और आमेलन की शक्ति का प्रभाव है।

2.31 लेकिन इससे हमें बेफिक्र होकर आत्मसन्तोष नहीं कर लेना चाहिए। यदि इन प्रवाहों का हम पर कभी प्रतिकूल प्रभाव हो तो उस स्थिति के लिए भी हमें सुधारात्मक उपाय करने का विकल्प खुला रखना चाहिए। इस सन्दर्भ में सबसे महत्वपूर्ण कदम जी-20 देशों के साथ कार्य करना है और एक सामूहिक निर्णय नियमावली बनाने का प्रयास करना है, जहां प्रत्येक देश का यह प्रयास रहे कि वह पूंजी के प्रवाह में कम से कम दखल दे और यदि कभी वह दखल देता भी है तो वह दूसरे देशों पर पड़ने वाले प्रभाव का भी ध्यान रखे। लेकिन जब तक समन्वित कार्य की ऐसी योजना सफलतापूर्वक तैयार नहीं की जाती, किसी भी राष्ट्र को स्वयं अपने स्तर पर नीतिगत उपायों को अपनाने के लिए तैयार रहना पड़ेगा। भारत में ऐसे नीतिगत उपायों पर विचार करते हुए दो अन्त: सम्बद्ध कारकों को ध्यान में रखना होगा। पहला, हालांकि रुपए के मूल्य में बहुत मामूली वृद्धि हुई है, हमारी वास्तविक विनिमय दर, विशेषकर प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण मुद्राओं की तुलना में, अधिमूल्यन के काफी स्थिर मार्ग पर रही है। यह शायद भारत के निर्यातों में हुई अपेक्षाकृत धीमी वृद्धि में योगदान का कारक हो सकती है, भले ही पिछले कुछ महीनों में इस मोर्चे पर अच्छा निष्पादन देखा गया है। इसने बड़े चालू खाता घाटे (कैड) में भी योगदान दिया है जिसका देश सामना कर रहा है। अपने आप में यह चिन्ता की बात नहीं होती, लेकिन इस मामले में कैड का बड़ा हिस्सा अपेक्षाकृत चल पूंजी से वित्तपोषित किया जा रहा है। इसकी प्रतिक्रिया में एक संभावित कार्य नीति यह है कि इस मार्ग के जरिए आने वाली विदेशी मुद्रा के एक अंश की खरीद करके बाजार-आधारित दखल कार्रवाई की जाए। इससे घाटे के वित्तपोषण के लिए उपलब्ध पूंजी की राशि सीमित हो जाएगी और इससे वास्तविक विनिमय दर भी स्थिर बनी रह सकती है। इसके संबंध में हमे निश्चय ही बाजार में जारी किए जाने वाले रुपये द्वारा उत्पन्न स्फीतिकारी दबावों के जोखिम को संतुलित करना होगा। तथापि, यह तर्क दिया जा सकता है कि चूंकि बाजार में आने वाला रुपया ऐसी अन्य मुद्राओं का स्थान लेगा जो परिवर्तनीय हैं और इसलिए पर्याप्त अर्थ सुलभ है, इसका स्फीतिकारी प्रभाव उतना गंभीर नहीं होगा जितना कि अक्सर मान लिया जाता है। यह भी आशा है कि भारत की बचत दर में वृद्धि शुरू हो जाने के चलते, चालू खाता घाटे पर कुछ दबाव कम हो जाएगा।

2.32 इन सभी नीतियों के साथ-साथ भारत में अधिक एफडीआई आकर्षित करने के प्रयास किए जाने चाहिए। एफडीआई पूंजी कहीं अधिक स्थिर होती है और इसलिए उस तरह की अस्थिरता को जन्म नहीं देती जैसी अस्थिरता अल्पावधिक पूंजी के कुछ रूप अपने साथ ले आते हैं। और तो और, विदेशी निवेश और राजनीतिक दखल को लेकर किसी जमाने में भारत को जो डर रहता था, वह भी अब कहीं कम हो चुका है क्योंकि अब यह कहीं अधिक मजबूत अर्थव्यवस्था है और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक मामलों में इसकी राय को कहीं अधिक वजन दिया जाता है। अधिक एफडीआई को आकृष्ट करने के लिए हमें ऐसे नए क्षेत्र खोजने के संदर्भ में सोचना होगा जिनमें हम इन निवेशों को लगा सकें। लेकिन इससे भी अधिक जरूरी बात यह है कि भारत में एफडीआई को आकर्षित करने में गंभीर अड़चन यह तथ्य है कि हमारी अफसरशाही ढीली है। विश्व बैंक द्वारा जारी आंकड़े दर्शाते हैं कि कारोबार करने के लिए अफसरशाही की कार्यदक्षता के संदर्भ में विश्व भर में भारत का 134वां है। जाहिर है यह एक ऐसा क्षेत्र है जहां सुधार किए जाने की गुंजाइश है। यदि हम अपनी अफसरशाही, प्रशासनिक तंत्र को अधिक कार्यदक्ष बना पाएं तो इससे अर्थव्यवस्था को मिलने वाले लाभ असंख्य होंगे। ऐसे राष्ट्रों के उदाहरण है जिन्हें औपनिवेशिक सरकारों से विरासत में बोझिल अफसरशाही मिली लेकिन वे उसमें सुधार करने में सफल रहे। हम उन राष्ट्रों से सबक ले सकते हैं लेकिन दिलचस्प बात तो यह है कि हम अपने देश के भीतर से भी सीख ले सकते हैं। सीधा-सरल सा परिकलन यह दर्शाता है कि यदि समस्त भारत देश के किसी एक हिस्से में अपनाई जाने वाली सर्वोत्तम पद्धतियों को अपना लें, जैसाकि, नए कारोबार शुरू करने में सुविधा होना, संविदाओं को लागू करना, दिवालिया फर्मों को जल्दी बंद करने में सहायता देने के लिए प्रक्रियाओं को सरल बनाना, तो भारत कार्यदक्षता के संदर्भ में 79वें स्थान पर आ जाएगा। दूसरे शब्दों में, हम अपने ही राष्ट्र से सीख कर अपने दर्जे में 55 स्थान तक का सुधार कर सकते हैं। इसका अर्थ देश की सीमा से परे से कोई सबक लेने से इन्कार करने की संकीर्णता को बढ़ावा देना नहीं है, बल्कि इसका अर्थ इस बात पर जोर देना है कि इसके बिना भी बहुत कुछ हासिल किया जा सकता है।

2.33 विषय से थोड़ा हटते हुए, सरकारों की आर्थिक और प्रतिनिधिमूलक शक्ति के दिलचस्प सवाल की ओर मुड़ना सार्थक होगा। वैश्विक आर्थिक मामलों में भारत की राय का अधिक वजन होने के बारे में पहले टिप्पणी की गई है। असल में, भारत की जी-20 की सदस्यता इस तथ्य का प्रमाण है। किसी भी सरकार की ''आर्थिक शक्ति'' इस बात का महत्वपूर्ण संकेत है कि वैश्विक मंच पर उस सरकार की राय का कितना महत्व है और यह भी कि उसे अपनी राय देने का कितना अधिकार होना चाहिए। किसी सरकार की आर्थिक शक्ति की संकल्पना किसी व्यक्ति की आर्थिक शक्ति से कहीं अधिक पेचीदा होती है। व्यक्ति को हम अक्सर उसकी आय या संपदा से आंकते हैं। इससे संकेत लेते हुए, हम सरकार की शक्ति को उसके द्वारा अर्जित राजस्व की कुल राशि जिसे वह संवितरित कर सकती है, से माप सकते हैं। हम सरकार की स्थायी आय का मोटा अनुमान लगाने के लिए सरकार

बाक्स 2.4 : संकट के बाद के विश्व में सरकार की आर्थिक शक्ति

राष्ट्रों और सरकारों की आर्थिक क्षमताएं हमेशा से बहुत महत्वपूर्ण शक्तियां रही हैं। जहां वैश्वीकरण की प्रक्रिया के कारण सरकारी आर्थिक शक्ति ने बाजार की शक्तियों की अनुपूर्ति की, वहीं वैश्विक आर्थिक संकट में सरकारों को वित्तीय बाजारों को स्थिर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने और विश्व अर्थव्यवस्था को इस स्थिति से उबारने के लिए समन्वयकारी कार्रवाई की प्रबंध व्यवस्था करते देखा गया। सरकारें अनुपाती साम्यता और विकास सुनिश्चित करने में भी अहम भूमिका निभाती है। इस महत्वपूर्ण प्रक्रिया को आकलित करने के लिए पैमाना विकसित करने की जरूरत से प्रेरित होकर सरकार की आर्थिक शक्ति का सूचकांक तैयार किया गया है। यह सूचकांक आईएमएफ और विश्व बैंक जैसे अंतरराष्ट्रीय संगठनों में विभिन्न देशों की सरकारों की मत-शक्तियों और अन्य शक्तियों को तय करने में मूल्यवान सिद्ध हो सकता है। यह सूचकांक 10 वर्ष (2000-09) के लिए तैयार किया गया है और इसमें 112 अर्थव्यवस्थाओं को शामिल किया गया है।

सरकारी आर्थिक शक्ति-सूचकांक (आईजीईपी) का प्रयास है–किसी सरकार द्वारा अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में स्वयं को प्रस्तुत करने की क्षमता को आकलित करना। इसका एक नियामक घटक भी है। चूंकि यह सूचकांक किसी भी सरकार की क्षमता की सीमा दर्शाता है, इसका प्रयोग यह तय करने के लिए भी किया जा सकता है कि सरकार को बहुपक्षीय मंचों पर अपनी राय किस सीमा तक व्यक्त करने का अधिकार है। यह सूचकांक चार परिवर्तनीय कारकों से बना है; सरकारी राजस्व, विदेशी मुद्रा भंडार, वस्तुओं एवं सेवाओं का निर्यात और मानव पूंजी। इन परिवर्तनीय कारकों में मुख्यत: इन बातों को शामिल किया गया है–संसाधन जुटाने की सरकार की क्षमता, अंतरराष्ट्रीय वित्तीय बाज़ारों में इसकी साख और विश्वसनीयता, वैश्विक आर्थिक कार्यकलापों पर इसका प्रभाव और इसकी प्रतिनिधिमूलक शक्ति यानि यह वैश्विक अर्थव्यवस्था जिसमें वैश्विक जनशक्ति भी शामिल है, के कितने बड़े हिस्से का प्रतिनिधित्व करने का दावा करती है। मानक आंकड़ों का प्रयोग सुनिश्चित करने के लिए, इस सूचकांक को तीन स्वीकृत डाटासेट का प्रयोग करते हुए तैयार किया गया है: आईएमएफ का आईएफएस और डब्ल्यूईओ; और संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) का मानव विकास सूचकांक (एचडीआई)।

वर्ष 2009 के परिणाम दर्शाते हैं कि शीर्ष दस स्थानों पर ये देश हैं (1) संयुक्त राज्य अमरीका, (2) चीन, (3) जापान, (4) जर्मनी, (5) भारत, (6) रूस, (7) ब्राजील, (8) फ्रांस, (9) इटली और (10) यूनाइटेड किंगडम। वर्ष 2000 में इन दस स्थानों पर ये देश थे (1) संयुक्त राज्य अमरीका, (2) जापान, (3) चीन, (4) जर्मनी, (5) फ्रांस, (6) यूनाइटेड किंगडम, (7) इटली), (8) कोरियाई गणराज्य (9) कनाडा और (10) भारत। शीर्ष अर्थव्यवस्थाओं में सबसे नाटकीय उत्थान ब्राज़ील का था जो 2000 के तेरहवें स्थान से बढ़कर 2009 में सातवें स्थान पर पहुंच गया और भारत 2000 के दसवें स्थान से बढ़कर 2009 में पांचवें स्थान पर आ पहुंचा। 2004 में चीन जापान को हटाकर दूसरे स्थान पर जा पहुंचा। यूनाइटेड किंगडम 2000 में छठे स्थान से गिरता हुआ 2008 में दसवें स्थान पर आ गया और 2009 में उसी स्थान पर बना रहा है। कनाडा 2000 में नौवें स्थान से गिरकर 2008 में पंद्रहवें स्थान पर आ गया।

वैश्विक आर्थिक शक्ति की बदलती गति को और अच्छी तरह देखा जा सकता है, यदि हम कुछ समय विशेष के संदर्भ में कुछ बड़ी आर्थिक ताकतों के सूचकांक मूल्यों का विश्लेषण करें। यदि हम 2000 में तीन शीर्ष देशों–संयुक्त राज्य अमरीका, जापान और चीन की तुलना करें तो पाएंगे कि सूचकांक मूल्यों में 2009 में हल्की गिरावट को छोड़कर संयुक्त राज्य अमरीका और जापान के सूचकांक की धीमी वृद्धि हो रही थी। इसके विपरीत, चीन ने तेज़ी से उन्नति की है और 2004 में जापान को पछाड़ने के बाद 2009 में संयुक्त राज्य अमरीका के लगभग समान स्तर तक जा पहुंचा है (देखें चित्र 1)

वर्ष 2000 में चौथे, नौवें और दसवें स्थान के देशों (नामश: जर्मनी, कनाडा और भारत) का विश्लेषण करने पर दिखाई देता है कि भारत 2000 में कनाडा से ज़रा नीचे के सूचकांक मूल्य से हटकर 2009 तक जर्मनी के बहुत नज़दीक जा पहुंचा है (चित्र 2)। बड़ी अर्थव्यवस्थाओं की श्रेणी में चीन और भारत ने 2000 में सभी शीर्ष दस देशों के विपरीत 2009 में कम सूचकांक मूल्य न रखते हुए असाधारण मज़बूती प्रदर्शित की।

यह भी दिलचस्पी का विषय है कि आर्थिक शक्ति की वृद्धि (2000 और 2009 के बीच सूचकांक मूल्य में प्रतिशत परिवर्तन) और संकट के बाद की अवधि (अर्थात् 2009 और 2010 के बीच) में सकल घरेलू उत्पाद में हुए परिवर्तन के बीच मज़बूत सकारात्मक संबंध है जो सूचकांक और संकट से उबरने की क्षमता द्वारा मापित आर्थिक शक्ति की वृद्धि के बीच कड़ी का संकेत देता है (चित्र 3)। इससे दोनों परिवर्तनीय कारकों के बीच प्रत्यक्ष कार्य-कारण संबंध स्थापित नहीं होता लेकिन यह व्याख्यात्मक दृष्टि से दिलचस्पी का विषय है।

चित्र 1: सूचकांक मूल्य

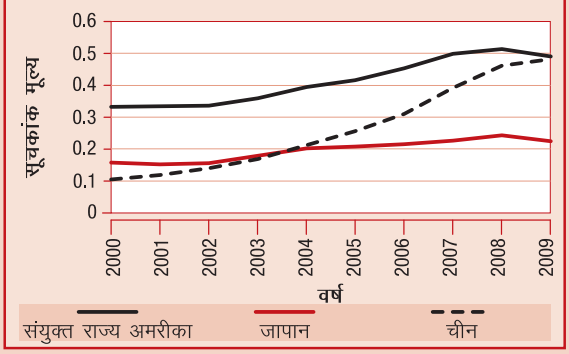

चित्र 2: सूचकांक मूल्य

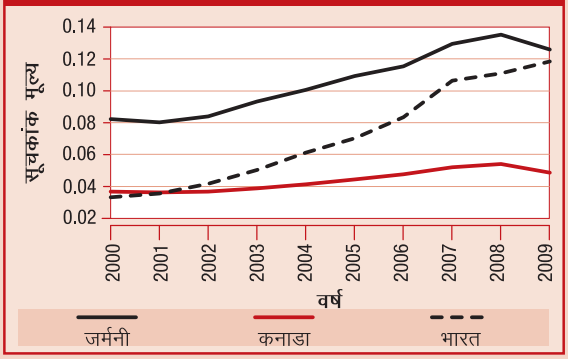

चित्र 3: सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि में परिवर्तन 2009–10

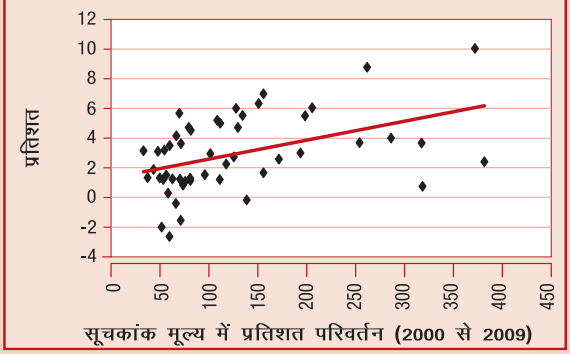

स्रोत : सरकार की आर्थिक शक्ति के सूचकांक और उसके निहितार्थों का पूरा विवरण आर्थिक प्रभाग, आर्थिक कार्य विभाग, वित्त मंत्रालय के आगामी पत्र: दि इवॉल्विंग डायनेमिक्स ऑफ ग्लोबल इकोनॉमिक पावर इन पोस्ट-क्राइसिस वर्ल्ड: रेवेलेशन्स फ्रॉम एन इन्डेक्स ऑफ गवर्नमेंट इकोनॉमिक पावर में उपलब्ध है।

की स्वामित्वाधीन परिसंपत्तियों का भी जायजा ले सकते हैं। लेकिन, सरकार की आर्थिक शक्ति राष्ट्र में उपलब्ध मानव पूंजी की राशि पर भी निर्भर करती है और इसलिए किसी स्तर पर यह सरकार को उपलब्ध होती है। सरकार की शक्ति विश्व के साथ राष्ट्र के समेकन के स्तर पर भी निर्भर करती है। ऐसा राष्ट्र जो समृद्ध तो है लेकिन उसका अर्थव्यवस्था तंत्र मुख्यत: आंतरिक ही है, दूसरे राष्ट्रों के लिए शायद बहुत महत्व नहीं रखता और इसलिए अंतरराष्ट्रीय मामलों में बहुत असर नहीं रख पाएगा। दूसरी ओर, ऐसा राष्ट्र जो बहुत अधिक निर्यात और आयात करता है, उसके पास दुनिया को प्रभावित करने की ताकत है। इन प्रवाहों को बाधित करने की संभावित आशंका ऐसी सरकार को अधिक आर्थिक ताकत देती है बजाय ऐसे राष्ट्र के जो भले ही समृद्ध हो लेकिन जिसके विश्व के साथ व्यापार एवं पूंजी संपर्क नगण्य हों। इन सभी कारकों को मिलाकर वित्त मंत्रालय के आर्थिक प्रभाग के अनुसंधानकर्ताओं ने एक सूचकांक तैयार किया है और बाक्स 2.4 में इसकी जानकारी दी गई है। जैसाकि उम्मीद ही है इसमें दिखाया गया है कि अमरीकी सरकार के पास सर्वाधिक आर्थिक शक्ति है। इसके बाद अवरोही क्रम में चीन, जापान, जर्मनी भारत, रूस, ब्राजील और फ्रांस का स्थान है। इस कहानी में दिलचस्प बात पिछले एक दशक में भारत और इससे भी ज्यादा चीन की आर्थिक शक्ति में तेजी से बढ़ोतरी होना रही है। बाक्स 2.4 अपने आप में ही दिलचस्प है क्योंकि विश्व के बदलते आर्थिक आधार पर आजकल बहुत कुछ लिखा जा रहा है।

नई पहल

2.34 अर्थव्यवस्था में होने वाले भारी विकास से नए अवसर सृजित होते हैं; और यह जरूरी है कि इन्हें गंवाया न जाए ताकि विकास सम्पोषणीय बन सके। नई पहलों के लिए अवसरों के कई क्षेत्र हैं; और यह बात स्पष्ट करने के इरादे से यहां इनमें से केवल कुछ पर विचार किया जाएगा। सरकार के बाहर और भीतर भी यह व्यापक रूप से स्वीकृत किया जाता है कि हमें गरीबी खत्म करने और जनसंख्या के उस हिस्से को अपनी अर्थव्यवस्था की मुख्यधारा में शामिल करने हेतु लम्बा रास्ता तय करना है जो इस समय हाशिए पर है और गरीबी में जी रहा है। इसके लिए पहला कदम यह सुनिश्चित करना होगा कि कोई भी भोजन से वंचित न रहे और सभी को मानक न्यूनतम पोषक आहार मिले। इस मोर्चे पर नई पहलें की गई हैं, जैसेकि नया खाद्य सुरक्षा विधेयक।

2.35 इस चरण पर आर्थिक नीति के कुछ प्रमुख सिद्धांतों को संक्षेप में बताना उचित होगा। यह आम धारणा है कि बाजार और समावेशन एक दूसरे के प्रतिकूल हैं। हालांकि सच यह है कि बाजारों में जहां कार्यदक्षता के आधार पर सेवाएं सौंपने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है, वहीं उनमें साम्यता अथवा समानता के लिए कोई सहज प्रवृत्ति नहीं होती। इसलिए यह सत्य है कि गरीबी खत्म करने तथा अधिक समतामूलक और समावेशी समाज के निर्माण के लिए केन्द्र, राज्य और स्थानीय सरकारों द्वारा प्रयोजनमूलक कार्रवाई किए जाने की जरूरत है। हमारा दृष्टिकोण यह है कि व्यापार, विनिमय और उद्यमों को सुसाध्य बनाने के लिए सरकार बाजारों के मुकाबले एक समर्थकारी भूमिका अदा करे। दूसरी ओर, जब वितरण और गरीबी उन्मूलन की बात आती है तब सरकार को नीतिगत हस्तक्षेप करके अधिक सकारात्मक भूमिका निभानी होगी। तथापि, जब भी संभव हो, यह हस्तक्षेप संपन्न वर्गों से गरीबों को प्रत्यक्ष अंतरण किए जाने के रूप में होना चाहिए और कीमतों के साथ यथासंभव कम से कम छेड़छाड़ की जाए। इस तथ्य कि बाजारों का स्वाभाविक रूप से साम्यता और गरीबी उन्मूलन के प्रति रूझान नहीं होता, का मतलब यह नहीं है कि हम बाजार की उपस्थिति को नजरअंदाज करें। बाजार का कानून बना रहेगा, भले हम उनकी मौजूदगी स्वीकारें या न स्वीकारें। श्रेष्ठ नीति निर्माण में इन कानूनों को स्वीकारने और समझने तथा हमारे लक्ष्यों की पूर्ति के लिए उन्हें इस्तेमाल किए जाने की जरूरत होती है।

2.36 राज्य द्वारा निर्दिष्ट न्यूनतम मात्रा की खाद्य अधिप्राप्ति और वितरण तंत्र की जरूरत के पीछे दो कारण हैं। पहला कारण वर्ष दर वर्ष खाद्य उपलब्धता और कीमतों के उतार-चढ़ाव में स्थिरता लाने से जुड़ा है। यह आत्मनिर्भरता के मुद्दे से भी जुड़ा है। हम नहीं चाहते कि खाद्य वस्तुओं की कमी के समय हम अन्य देशों से किए गए आयातों पर पूरी तरह निर्भर रहें और हमें अपने ही भंडार पर निर्भर रहने और अपने उपभोक्ताओं को आपूर्ति करने में समर्थ होना चाहिए। दूसरा उद्देश्य गरीबों और कमजोर लोगों को खाद्य सुरक्षा मुहैया कराना है। कोई भी, चाहे वह कितना भी गरीब क्यों न हो, अनाज से वंचित और कुपोषण का शिकार नहीं होना चाहिए।

2.37 जहां तक वर्ष दर वर्ष खाद्य वस्तुओं की कीमतों को स्थिर रखने का हमारा लक्ष्य है, हमें मामूली सफलता ही हासिल हुई है। हमारी अधिप्राप्ति नीति की मेहरबानी से मुख्यत: गेहूं और चावल के मामले में, हम अंतरराष्ट्रीय आपूर्तिकर्ताओं के चंगुल में नहीं फंसे हैं। हालांकि हमारे खाद्य भंडार का अध्ययन यह दर्शाता है कि हमने अच्छे और खराब वर्षों में बड़ी मात्रा में भंडार बनाए रखा है। इसी प्रकार, यह अधिप्राप्ति वर्ष दर वर्ष उन चक्रीय विशेषताओं के बिना की जाती है, जिसकी एक कारगर मूल्य स्थिरीकरण प्रणाली में कोई भी आशा करेगा। इस प्रकार, 2006-07 में गेहूं, चावल और मोटे अनाज की कुल अधिप्राप्ति 34.3 मिलियन टन, 2007-08 में 40.1 मिलियन टन, 2008-09 में 57.7 मिलियन टन और 2009-10 में 57.2 मिलियन टन रही। स्पष्टत: यह देखते हुए कि पिछला वित्त वर्ष उच्च खाद्यान्न मुद्रास्फीति वाला वर्ष था, हमें सामान्य से कम अधिप्राप्ति होने और भंडार में रखे अनाज को अधिक मात्रा में निकाले जाने की उम्मीद होती। किन्तु ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। जाहिर है खाद्यान्नों के निर्गम की हमारी कार्यनीति में सुधार किए जाने की बहुत गुंजाइश है। वर्तमान कार्यप्रणाली में प्रणालीगत त्रुटियां हैं। यह सुनिश्चित करने की कोशिश करते हुए कि अधिप्राप्त खाद्यान्न को उस कीमत पर जारी न किया जाए जिससे सरकार को भारी घाटा न उठाना पड़े, हम अक्सर कीमत इतनी अधिक रख देते हैं कि कोई खरीदार ही नहीं मिलता। खाद्यान्न जारी न करना बाजार कीमतों को कम करने के प्रयोजन को निष्फल कर देता है।

2.38 इन सब बातों के चलते यह सुझाव दिया गया है कि राज्य को यह खाद्यान्न लगभग शून्य कीमत पर जारी कर देना चाहिए। पहली नज़र में यह विवेकसम्मत प्रतीत होता है क्योंकि भांडागारों में अत्यधिक खाद्यान्न पड़ा हुआ है, बल्कि यहां तक कि यह खुले में पड़ा है और बर्बाद हो रहा है। लेकिन इस सीधी-साफ दिखाई देने वाली नीति को अपनाने में एक समस्या है। न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) नीति को चलाने का हमारा तरीका यह है कि एक तय कीमत होती है और किसानों को उस कीमत पर सरकार को अपना अनाज बेचे जाने की इजाजत दी जाती है। यदि इसी एमएसपी नीति को जारी रखते हुए हमने सरकारी खाद्यान्न भंडारों के अतिरेक अनाज को लगभग शून्य कीमत पर बेचना शुरू किया तो इस खाद्यान्न का दोबारा बेचा जाना तय है। अर्थात् व्यापारी शून्य अथवा नगण्य कीमत पर सरकार से अनाज खरीदेगा और उसे सरकार को एमएसपी पर बेच देगा तथा फिर खरीदेगा और यह सिलसिला इसी प्रकार चलता रहेगा। इसके प्रमाण हैं कि अभी भी एक निश्चित मात्रा में खाद्यान्न को इसी तरह दोबारा बेचा जाता है। किन्तु यदि एमएसपी और निर्गम मूल्य के बीच अंतर बहुत अधिक हो जाता है तो यह समस्या गंभीर हो सकती है। जब तक प्रणाली में अन्य त्रुटियों का समाधान नहीं किया जाता, खाद्यान्न नीति से जुड़ी हमारी समस्या, सरकार से नगण्य कीमतों पर अनाज जारी करवाने की छोटी-मोटी कार्रवाईयों के माध्यम से हल नहीं की जा सकती। हमें हमारे निर्गम और अधिप्राप्ति नीतियों दोनों पर विचार करने की जरूरत है। उत्पादन के आधार पर अधिप्राप्ति में वर्ष-दर-वर्ष घट-बढ़ होनी चाहिए। साथ ही अधिप्राप्ति की अधिक से अधिक खिड़कियां देश के विभिन्न भागों में खुली रखी जानी चाहिए। इस समय जहां तक किसानों का संबंध है, कुछेक राज्यों को छोड़कर एमएसपी पूरी तरह काल्पनिक मूल्य है। वे जानते हैं कि उन्हें उस कीमत पर अनाज बेचने का अधिकार है परन्तु सरकारी अनाज गोदामों अथवा खाद्यान्न-स्वीकृति विण्डो तक उनकी पहुंच नहीं है जहां वे अनाज बेच सकें। भंडारण क्षमता को बड़ा करने की भी तत्काल आवश्यकता है ताकि खाद्यान्न बर्बाद न हो। यह बात स्पष्ट होनी चाहिए कि बेहतर भंडारण का कार्य हालांकि महत्वपूर्ण है लेकिन इससे मुद्रास्फीति की समस्या हल नहीं होने वाली। इसके लिए हमें खाद्यान्न को जारी करने की कारगर कार्यनीति बनानी होगी, और यह निर्गम भारी मात्रा में नहीं, जिससे कि एकाधिकार तंत्र बनेगा, बल्कि कई छोटी-छोटी मात्राओं में होना चाहिए।

2.39 गरीबों को खाद्य गारंटी देने के दूसरे उद्देश्य के मोर्चे पर कई पहलें की गई हैं और सरकार इस समय खाद्य सुरक्षा विधेयक पर विचार कर रही है, जो जनता को बुनियादी आहार की एक निश्चित मात्रा का कानूनी अधिकार देगा। यह कार्य करने से पहले कृषि उत्पादकता और उत्पादन में वृद्धि करने पर जोर देना अच्छा होगा जिसकी चर्चा समीक्षा और विभिन्न आयोजना दस्तावेजों में की गई है। पहले यह क्षेत्र पिछड़ गया था लेकिन इस स्थिति को ठीक करने के लिए नीतियां कार्यान्वित का जा रही हैं। 2010-11 में 5.4 प्रतिशत के स्तर पर कृषि, वानिकी और मत्स्य उद्योग की अनुमानित वृद्धि आशा जगाती है कि इनमें से कुछ नीतियां काम कर रही हैं। हमें इस रफ्तार को बनाए रखने की ज़रूरत है।

2.40 अब हम फिर से खाद्य सुरक्षा विधेयक पर आते हैं, यह एक महत्वपूर्ण कदम है जो भारत में गरीबी और कुपोषण की कायापलट कर सकता है। इस बारे में बहुत चर्चा होती रही है कि इस कार्यक्रम के कवरेज का कितना विस्तार हो। हालांकि जो बात हमेशा समझी नहीं जाती वह यह है कि यह कार्यक्रम उस तंत्र की कार्यक्षमता पर निर्भर होगा जिसके माध्यम से हम अनाज वितरित करने का प्रयास करते हैं। भारत भर में लगभग 500,000 राशन की दुकानों को सस्ता अनाज सौंपने और फिर उनके द्वारा उस अनाज को गरीब परिवारों को बाजार से कम कीमत पर बेचने की मौजूदा प्रणाली के कारण भारी हेरा-फेरी होती हैं। मौजूदा प्रणाली में, सब्सिडी गरीब परिवारों को सीधे न देकर राशन की दुकान को दी जाती है। अध्ययन दर्शाते (बाक्स 2.5 देखें) हैं कि राशन की दुकानें अक्सर खुले बाजार में अधिक बाजार मूल्य पर अनाज बेचती हैं और गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वाले परिवारों (बीपीएल) को खाली लौटा देती हैं या बीपीएल परिवारों को दिए जाने वाले अनाज में मिलावट करती हैं। स्पष्ट है कि यदि हम सब्सिडीकृत चावल और गेहूं के कवरेज को अधिक व्यापक करने का प्रयास करते हैं और *वितरण की मौजूदा प्रणाली बनाए रखते हैं*, तो कुल अधिप्राप्ति इतने बड़े स्तर पर करनी होगी कि वह हासिल न की जा सकेगी। इसलिए, वितरण तंत्र में हेराफेरी रोकना सबसे बड़ी आवश्यकता है; और हम यह काम जितना अधिक कारगर रूप से कर पाएंगे, हम अपनी जनता को सस्ते अनाज का उतना ही बड़ा कवरेज प्रदान कर पाएंगे।

2.41 ऐसा करने का एक सीधा-साफ तरीका जिस पर अर्थशास्त्र के साहित्य में व्यापक चर्चा की जा चुकी है, यह है कि गरीब परिवारों को सब्सिडी सीधे दे दी जाए और पीडीएस स्टोरों को बाजार मूल्य पर अनाज बेचने की अनुमति दी जाए। इसमें गरीब परिवारों को स्मार्ट कार्ड अथवा खाद्य कूपन दिए जाएंगे और फिर उन्हें किसी भी पीडीएस स्टोर अथवा अन्य स्टोर में जा कर स्मार्ट कार्ड अथवा कूपन का प्रयोग करके मौजूदा बाजार मूल्य पर अनाज खरीदने की स्वतंत्रता होगी। इस प्रणाली में, दुकानदार की नजर में गरीब उपभोक्ता का उतना ही महत्व है जितना समृद्ध उपभोक्ता का क्योंकि दोनों एक ही कीमत अदा करते हैं। इसके अलावा, यदि किसी दुकान में अनाज की आपूर्ति में मिलावट की जाती है, तो जनता को दूसरे स्टोर में जाने की आजादी होगी और इसका मतलब यह होगा कि अनाज में मिलावट करने का उत्साह ठंडा पड़ जाएगा। जैसे ही 'आधार'-आधारित पहचान-प्रणाली सक्रिय होगी, स्मार्ट कार्ड प्रणाली पोर्टेबल हो जाएगी। दूसरे शब्दों में, गरीब व्यक्ति भारत में एक स्थान से दूसरे स्थान को जा सकेगा और वहां भी सब्सिडीकृत अनाज के लिए अपने अधिकार का प्रयोग कर सकेगा। मौजूदा प्रणाली गरीब जनता द्वारा बेहतर मजदूरी पाने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने पर एक प्रभावी रोक भी लगाती है क्योंकि उन्हें दूसरे लाभ गंवा देने का जोखिम बना रहता है।

बॉक्स 2.5 : खाद्य सब्सिडी और हेरा-फेरी

सब समझते हैं कि बीपीएल परिवारों, कुछ एपीएल परिवारों और अन्य कमजोर वर्गों के लिए लक्षित सब्सिडीकृत खाद्यान्नों की भारी मात्रा खुले बाजार में पहुंचती है, जहां इसे राशन की दुकान के लिए निर्धारित कीमत से कहीं अधिक कीमत पर बेचा जाता है। क्या यह सच है? यदि हां, तो इस हेराफेरी की मात्रा कितनी है? ऋतिका खेड़ा और शिखा झा एवं भारत रामास्वामी द्वारा किए गए हाल ही के अनुसंधान में सुविचारित सांख्यिकीय अनुमान दिए गए हैं, जहां पहले हमें अटकलबाजी पर निर्भर रहना पड़ता था। खाद्य और उपभोक्ता मामले मंत्रालय सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) के तहत गेहूं और चावल की उठाई गई मात्रा संबंधी मासिक आंकड़े प्रकाशित करता है। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण (एनएसएस) ऐसे आंकड़े मुहैया कराता है जो परिवारों द्वारा वास्तव में खरीदे गए पीडीएस के गेहूं और चावल की मात्रा के यादृच्छिक प्रतिदर्श पर आधारित होते हैं। उठाई गई मात्रा और परिवारों तक पहुंचने वाली वास्तविक मात्रा के बीच का अंतर लक्षित जनसंख्या को प्राप्य अनाज की चोरी अथवा उसे अन्यत्र बेचे जाने की मात्रा इंगित करता है। इस पद्धति को प्रयुक्त करके खेड़ा यह दर्शाती हैं कि 2001-02 में पीडीएस चावल के 18.2 प्रतिशत और पीडीएस गेहूं के 67 प्रतिशत की हेरी-फेरी की गई थी। दूसरे शब्दों में, गरीबों के लिए लक्षित किए गए समग्र खाद्यान्न का 40 प्रतिशत से अधिक हिस्सा उन्हें नहीं मिला। झा और रामास्वामी 2004-05 के एनएसएस व्यय सर्वेक्षण को प्रयुक्त करते हुए यह जानकारी देते हैं कि गरीबों हेतु दिए जाने वाले समग्र खाद्यान्न के 55 प्रतिशत हिस्से का घपला हुआ है। मुद्दा यह नहीं कि सही आंकड़ा 40 और 55 प्रतिशत के बीच कहां है बल्कि यह कि इस समय जो हेरा-फेरी हो रही है, वह बहुत अधिक है। गरीबों को उन्हें मिलने वाले अनाज के बारे में यदि हम कानूनी गारंटी दे देते हैं, और यदि हम अपने मौजूदा सुपुर्दगी तंत्र को ही इस्तेमाल करते हुए इस वादे को निभाने की कोशिश करते हैं तो हमें लक्षित जनसंख्या के लिए खाद्यान्न की लक्षित मात्रा से दुगुनी मात्रा भेजनी होगी।

संदर्भ: **आर. खेड़ा (2011), इंडियाज़ पब्लिक डिस्ट्रिब्यूशन सिस्टम: यूटिलाइज़ेशन एण्ड इम्पैक्ट, *जर्नल ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज़* (आने वाला)। एस. झा और बी. रामास्वामी (2010), 'हाऊ कैन फूड सब्सिडीज़ वर्क बैटर? आन्सर्ज फ्रॉम इंडिया एंड फिलीपीन्स', एशियन डेवलपमेंट बैंक वर्किंग पेपर संख्या 221।**

2.42 यही बात केरोसिन, डीजल और उर्वरकों जैसी अन्य वस्तुओं पर भी लागू होती है। इस सरकार की यह सुनिश्चित करने की नीति बहुत प्रशंसनीय है कि ये महत्वपूर्ण वस्तुएं बाजार के भरोसे छोड़ने जैसाकि परंपरावादी विश्लेषक सिफारिश करते हैं, की बजाय गरीबों तक पहुंचे। किन्तु इन वस्तुओं को गरीबों तक पहुंचाने के लिए तंत्र के चयन में वही सिद्धांत लागू होंगे जिन पर खाद्यान्नों के संदर्भ में चर्चा की गई है। जैसे ही हम सरकारी आदेश पर वस्तुओं चाहे वह केरोसिन, डीजल अथवा उर्वरक हों; के दाम कम करते हैं, हम मिलावट, हेरा-फेरी और भ्रष्टाचार को निमंत्रण देते हैं। इसलिए जरूरत इस बात की है कि सुपुर्दगी का ऐसा तंत्र बनाया जाए जो प्रोत्साहन-अनुकूल हो और इन विकृतियों को कम कर सके। मूलत: इसका अर्थ यह है कि गरीबों को सब्सिडी देने के लिए कीमतों को विकृत न किया जाए बल्कि गरीबों को सीधे ही सब्सिडी दे दी जाए। शुरुआती तौर पर, हम यह कोशिश कैरोसिन जैसे उत्पाद से कर सकते हैं, गरीबों को चाहे स्मार्ट कार्ड के रूप में कैरोसिन की सब्सिडी दी जाए, और उन्हें बाजार से बाजार मूल्य पर कैरोसिन खरीदने दिया जाए। इससे लक्ष्य हासिल करने में सुधार होगा और भ्रष्टाचार में कमी आएगी। यह सच है कि गरीब इसमें से कुछ सब्सिडी को गैर-जरूरी चीजों पर इस्तेमाल कर सकते हैं, लेकिन गरीबों के लिए ऐसा करना निश्चित रूप से बेहतर है, बजाय इसके कि ऐसा काम, गरीबों के लिए अभिप्रेत सब्सिडी को इस्तेमाल करके दुकानदार करे।

2.43 ऐसे अन्य कई क्षेत्र हैं जिनमें पहल किए जाने से समाज को बड़े फायदे होने की संभावना है। इसका एक उदाहरण है पर्यटन। भारत में असंख्य आकर्षक स्थान जो विविध प्राकृतिक स्थलों से लेकर ऐतिहासिक स्मारकों और दो हजार वर्ष से भी अधिक पहले के पुरावशेषों तक फैले हैं, के चलते भारत में पर्यटन क्षेत्र का विस्तार करने की बहुत गुंजाइश है। अभी तक हमने इस संभावना के छोटे से अंश को भी नहीं भुनाया है। 2010 में कुल 5.58 मिलियन विदेशी पर्यटक भारत आए और उनसे 64,889 करोड़ रुपए की विदेशी मुद्रा अर्जित की गई। भारत के लिए यह संभव है कि इस समय भारत आने वाले पर्यटकों से कई गुना ज्यादा पर्यटक आएं। उदाहरण के लिए 2007 में 5.1 मिलियन पर्यटक भारत आए, जबकि चीन में 54.7 मिलियन और मलेशिया में 20.1 मिलियन पर्यटक पहुंचे। दिलचस्प बात तो यह है कि भारत अपने यहां आने वाले पर्यटकों की तुलना में कहीं ज्यादा पर्यटक बाहर भेजता है। उभरती अर्थव्यवस्था के लिए ऐसा काफी असामान्य है। इस क्षेत्र की विशाल क्षमता का दोहन करने के लिए अवसंरचना में निवेश करने की आवश्यकता है और हमारी आप्रवास और वीजा सेवा में सुधार लाना होगा। लेकिन इस क्षेत्र में बेकार पड़े असंख्य लाभों को न भुनाना मूर्खता होगी।

2.44 विकास और बड़े संभावित लाभ की गुंजाइश वाला दूसरा क्षेत्र है शिक्षा–स्कूली स्तर और उच्च शिक्षा दोनों। इस समय उच्च शिक्षा में भारत का सकल नामांकन अनुपात (जीईआर) 13.5 प्रतिशत है जिसे अक्सर तृतीयक नामांकन अनुपात भी कहा जाता है। अर्थात् 18 से 23 वर्ष तक की उम्र वाले (अर्थात् कॉलिज जाने की उम्र के) व्यक्तियों का 13.5 प्रतिशत वस्तुत: कॉलेज अथवा विश्वविद्यालय में नामांकित है। अमरीका में यह आंकड़ा 81.6 प्रतिशत है। यहां तक कि चीन और मलेशिया, जिनसे कुछ दशकों पहले तक भारत आगे था, अब हमारे जीईआर को पार करके क्रमश: 22.1 और 29.7 के आंकड़ों पर पहुंच गए हैं। भारत इस समय प्रतिवर्ष 6000 के लगभग पीएचडी तैयार करता है। चीन ने जहां 1993 में प्रतिवर्ष 1900 पीएचडी तैयार किए थे, अब 22000 से ज्यादा तैयार करता है। सिद्धांतत: भारत के लिए जीईआर को तेजी से दोगुना करना और अब से एक दशक के अन्दर 30 प्रतिशत तक ले जाना संभव है। दीर्घावधिक परिप्रेक्ष्य में किसी भी अर्थव्यवस्था का विकास उसके नागरिकों और मानव पूंजी की योग्यता तथा जनसमूह के नवपरिवर्तन की भावना पर निर्भर करता है। जाहिर है हमें इस क्षेत्र में और अधिक बुद्धिमानी के साथ निवेश करने की आवश्यकता है।

2.45 उच्च शिक्षा क्षेत्र में एक बड़ी संभावना यह है कि भारत को वैश्विक शिक्षा के केन्द्र के रूप में विकसित किया जाए। इस बात के चलते कि पारंपरिक रूप से हम उच्च शिक्षा के क्षेत्र में काफी समर्थ रहे हैं और अंग्रेजी भाषा के ज्ञान में भी हमारा पलड़ा भारी है, यह संभव है कि भारत को उच्च शिक्षा के प्रमुख केन्द्र के रूप में विकसित किया जाए जहां विश्व भर से विद्यार्थी अध्ययन के लिए आएं। औद्योगीकृत राष्ट्रों में शिक्षा के बड़े खर्च हैं (अमरीका के अग्रणी विश्वविद्यालयों में वार्षिक ट्यूशन शुल्क लगभग 40,000 अमरीकी डालर है), भारत के लिए यह संभव है कि विकासशील और उभरते देशों से ही नहीं बल्कि अमरीका और औद्योगीकृत राष्ट्रों के विद्यार्थियों को भी आकर्षित करे। हम इन विद्यार्थियों को ऐसी कीमत पर शिक्षा दे सकते हैं जहां हम अपनी सारी लागत वसूल कर लेंगे और उसके बाद भी लाभ अर्जित कर लेंगे तथा उन्हें भी ऐसी कीमत पर शिक्षा मिल जाएगी जो कि अमरीका में उनके द्वारा चुकाई जाने वाली कीमत से कहीं कम होगी अथवा जो यूरोप के कई देशों में उनके लिए सरकार ने चुकाई होती। फिर इस लाभ का उपयोग हमारे विश्वविद्यालयों और कॉलिजों के विस्तार के लिए किया जा सकता है जहां हमारे विद्यार्थी नामांकन करवा सके। इन सब के लिए हमें अनुपूरक निवेशों की आवश्यकता होगी। अच्छी सुविधाओं वाले हॉस्टलों की जरूरत होगी और ब्राडबैण्ड इन्टरनैट कनेक्टिविटी देनी होगी। हमें अपने अधिकारी तंत्र की प्रक्रियाओं में भी सुधार लाना होगा। उदाहरण के लिए, हमें विद्यार्थियों को कई वर्षों का वीजा देने की आवश्यकता होगी क्योंकि कोई भी एक वर्ष के वीजा पर दो वर्ष का अध्ययन करने के लिए नहीं आना चाहेगा और इस अनिश्चितता में नहीं रहना चाहेगा कि इसे बढ़ाया जाएगा कि नहीं। अवसंरचना तथा और अधिक कार्य-कुशल अफसरशाही निर्मित करने के लिए किए गए ये निवेश न केवल उच्च शिक्षा के क्षेत्र को बढ़ावा देंगे बल्कि ये सभी आरंभिक लागतें मध्य से दीर्घावधिक परिप्रेक्ष्य में प्राप्त होने वाले लाभों से कहीं अधिक वसूल हो जाएंगी।

2.46 जैसाकि अभी चर्चा की गई थी, उपर्युक्त उपायों और अन्य विकास परियोजनाओं की बुनियाद में है बेहतर अवसंरचना की जरूरत। बारहवीं पंचवर्षीय योजना की शुरूआत होने से ठीक पहले का वर्ष होने के नाते, भारत की अवसंरचनागत आवश्यकताओं का जायज़ा लेने का यह एक अच्छा समय है। इस **समीक्षा** में जैसा कि अन्यत्र चर्चा की गई है, भारत ने पिछले कुछ वर्षों में देश के अवसंरचनागत आधार को व्यापक करने के लिए विशेष प्रयास किए हैं। ये उपाय ग्रामीण अवसंरचना, रेल, राजमार्ग, विद्युत और हमारे छोटे-बड़े शहरों के विकास से जुड़े हैं। पूर्वी एशियाई अर्थव्यवस्थाओं ने इनमें से अधिकतर को सही ढंग से तैयार की गई नीलामियों के माध्यम से की गई सरकारी जमीन की बिक्रियों के जरिए वित्तपोषित किया था। इससे हम यह सबक ले सकते हैं कि हम यह सुनिश्चित कर लें कि ऐसे बड़े अवसरंचनागत विस्तार वित्तीय दृष्टि से अर्थक्षम हों।

2.47 योजना आयोग अगली पंचवर्षीय योजना में अवसंरचना को ज़बर्दस्त बढ़ावा देने के लिए कार्यरत है। ऐसा हो पाए, यह सुनिश्चित करने के लिए केवल ईंट और गारे की जरूरत इतनी नहीं होगी, जितनी जरूरत वित्त साधनों और तंत्र रचना की होगी। अवसंरचनागत निवेशों को दीर्घावधिक ऋणों की आवश्यकता होती है क्योंकि इनमें से कुछ निवेशों को वित्तीय रूप से अर्थक्षम होने के लिए 5, 10 यहां तक कि 15 वर्ष भी लग सकते हैं। स्वाभाविक है कि बैंक ऐसे दीर्घावधिक ऋण देने के प्रति सावधान रहते हैं। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि अवसंरचना में घरेलू और अन्तरराष्ट्रीय, निजी और सरकारी निवेश आकृष्ट करने के लिए उपयुक्त प्रणालियां बनाई जाएं । निवेश के किसी भी रूप में निजी धन लगाने के लिए महत्वपूर्ण संघटक है अनुबंध की विश्वसनीयता। किसी निवेश में अपना पैसा लगाकर क्या आप निश्चिंत हो सकते हैं कि उधारकर्ता पैसा नहीं दबाएंगे? बेशक, ऐसे कुछ खण्ड जरूर होंगे जिनके अन्तर्गत एक उधारकर्ता दिवालियापन कवर को न्यायसंगत सिद्ध कर सकता है, लेकिन कानूनी प्रशासनिक संरचना ऐसी होनी चाहिए जो यह सुनिश्चित करे कि अनुबंधों में कोई धांधलेबाजी न हो। यह केवल लघु वित्त के लिए ही जरूरी नहीं है बल्कि यह सुनिश्चित करने के लिए भी ज़रूरी है कि अवसंरचनागत निवेशों में अधिक धनराशि लगाई जाए।

आर्थिक प्रगति का सामाजिक आधार

2.48 पहले दिए गए विश्लेषण में इस बात पर जोर दिया गया था कि श्रेष्ठ आर्थिक नीति बनाने के लिए यह जरूरी है बाजार के विभिन्न प्रतिभागियों–पुलिसकर्मी, राशन की दुकान करने वाला, और आम नागरिक को पर्याप्त स्वार्थपरायण, बुद्धिमान व्यक्ति मानना आवश्यक है। यदि इन लोगों को नाम मात्र प्रयास से कुछ अतिरिक्त पैसा कमाने का अवसर मिले तो वे इस मौके को झपट लेंगे। इसलिए, भ्रष्टाचार और हेरा-फेरी को रोकने के लिए हमें इस तरह नीतियां बनानी होंगी कि आम नागरिकों और कानून लागू करने वाले को छलकपट का प्रलोभन न रहे। तदनुसार, इस समस्या का मूल है–अच्छी कार्य प्रणाली की रचना। गरीबों तक पहुंचाई जाने वाली और हमारे नागरिकों के कल्याण की कई अच्छी योजनाएं असफलता के दौर से गुजरी हैं क्योंकि नीति निर्माताओं की प्रवृत्ति यह मानने की है कि ये नीतियां निष्कपट ईमानदार लोग अथवा पूरी तरह से त्रुटिहीन मशीनों द्वारा कार्यान्वित की जाएंगी। ऐसे दोषपूर्ण अनुमानों पर आधारित मॉडलों का असफल होना तय ही है। यह बहुत जरूरी है कि भारतीय नागरिक इसे समझ लें क्योंकि जब एक बार जनमत बदलता है तो नीति निर्माताओं के लिए नीति में परिवर्तन करना आसान होगा।

2.49 इस विश्लेषण से यह अर्थ नहीं निकाल लेना चाहिए कि हठीला, स्वार्थपरायण व्यवहार ही मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। यह निराशाजनक धारणा, जो कुछ पूर्ववर्ती मुख्यधारा के अर्थशास्त्र में काफी व्याप्त थी, सौभाग्यवश सच नहीं है। हाल ही के अध्ययन दर्शाते हैं कि मनुष्य में सहयोग करने, निष्ठावान रहने और ईमानदार होने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। वे अक्सर समाज के अनुकूल व्यवहार को दर्शाने के लिए कुछ निजी लाभों को भी त्यागने के लिए तैयार रहते हैं। लेकिन ईमानदारी और विश्वसनीयता के ये गुण समय और संदर्भ पर निर्भर करते हुए एक समुदाय से दूसरे समुदाय में और एक ही समुदाय में भी अलग-अलग भी हो

सकते हैं (बॉक्स 2.6 देखें)। जो बात अब अधिकाधिक स्वीकारी जा रही है वह यह है कि सफल आर्थिक विकास का ईमानदारी और विश्वसनीयता जैसे मानव मूल्यों के साथ मजबूत संबंध है। इन सामाजिक गुणों के बिना बड़े लाभ और निजी सुविधाएं प्राप्त करने की दौड़ अव्यवस्थित और अराजकतापूर्ण समाज को जन्म देती है।

2.50 ऐसे भी अध्ययन हैं जो यह दर्शाते है कि जिन समाजों में आपसी विश्वास अधिक होता है, वहां आर्थिक विकास ज्यादा तेज रफ्तार से होता है। ऐसा क्यों होता है यह जानना कठिन नहीं है। एक आधुनिक और कार्यक्षम अर्थव्यवस्था अनुबंधों पर और इन अनुबंधों पर लोगों के विश्वास करने की क्षमता पर बहुत अधिक निर्भर करती है। कोई व्यक्ति अपने घर के रंग रोगन के लिए रंगसाज को पैसा देता है। यदि यह जोखिम अधिक हो कि रंगसाज पैसा ले लेगा और फिर खराब काम करके अनुबंध को तोड़ देगा तो लोग यही चाहेंगे कि लम्बे समय तक अपने घरों का रंग रोगन न कराया जाए। एक व्यक्ति कंपनी को उधार देता है और कंपनी 10 वर्ष की अवधि के दौरान एक निश्चित ब्याज दर का भुगतान करने तथा बाद में मूलधन लौटाने का वादा करती है। ऐसे देश में जहां ऐसे अनुबंध विश्वसनीय नहीं हैं और कंपनियों द्वारा अनुबंध तोड़े जाने की संभावना हो, इस बात की उम्मीद नहीं की जा सकती कि लोग उन कंपनियों में धन का निवेश करेंगे। बांड बाजार लड़खड़ाएगा और कंपनियां इष्टतम से कम ही निवेश कर पाएंगी। संक्षेप में, एक आधुनिक, गतिशील अर्थव्यवस्था पूरी तरह अनुबंधों और अनुबंधों में विश्वास करने की हमारी क्षमता पर निर्भर होती है। अनुबंधों को प्रवृत्त कराने की कुछ जिम्मेदारी राज्य और न्यायपालिका की होती है। दीर्घावधिक अनुबंध, जैसेकि अगले 20 वर्षों में अदायगी के वादे के साथ घर खरीदने का बंधक पत्र, प्रवृत्त करने के लिए अनिवार्यत: राज्य मशीनरी पर निर्भर होगा। लेकिन, यही अनुबंधों के एकमात्र रूप नहीं हैं। आर्थिक जीवन छोटे-छोटे वायदों से भरपूर है–मैं तुम्हें आज ''क'' की आपूर्ति

बॉक्स 2.6 : समाज-अनुकूल व्यवहार और आर्थिक विकास

अर्थशास्त्र के साहित्य में अब अधिकाधिक यह तर्क दिया जा रहा है कि समाज-अनुकूल व्यवहार जिसमें परोपकार और निष्ठा शामिल है, मनुष्य का स्वभाविक गुण है तथा इसके अलावा यह अर्थव्यवस्था के कुशल कार्यकरण के लिए आवश्यक घटक भी है। दूसरे शब्दों में, मनुष्य में दूसरों के लिए अपने हित को त्याग देने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है या फिर क्योंकि इस व्यक्ति ने ऐसा करने का वायदा किया है इसलिए ऐसा करना जरूरी है। इस गुण का उद्विकास हुआ होगा लेकिन इसका अस्तित्व अब प्रयोगशाला परीक्षणों में भी अच्छा-खासा दिखाई देता है। प्रयोगशाला में किए गए इन प्रयोगों के पीछे प्रमुख धारणा इस प्रकार है। प्रयोगकर्ता एक प्रयोगशाला में सभी प्रयोग-व्यक्तियों को युगल-रूप में रखता है और प्रत्येक युगल से इस प्रकार कार्य करने के लिए कहता है। दोनों व्यक्तियों में से एक, जिन्हें हम 'क' कहेंगे, से कहा जाए कि यदि वे चाहें तो एक निश्चित धनराशि (जिसे 'क' का निवेश माना जाए) 'ख' को दें दे। यदि 'क' निवेश करने के लिए मना कर देते हैं तो उनका कार्य यहीं समाप्त हो जाता है, 'क' और उनके भागीदार 'ख' दोनों को कुछ नहीं मिलता और वे घर वापस चले जाते हैं। यदि 'क' कुछ धनराशि का निवेश करता है, अर्थात् यह राशि 'ख' को देता है, तो प्रयोगकर्ता, उसमें कुछ और धनराशि जोड़ देता है और यह सारा धन 'ख' को दे देता है। फिर 'ख' से पूछा जाता है कि क्या वह प्राप्त हुई कुल धनराशि का कुछ हिस्सा वापस 'क' को लौटाना चाहते हैं। दूसरे शब्दों में, 'ख' को मौका दिया जाता है कि वह अपने लाभ का कुछ भाग 'क' को लौटाएं क्योंकि यदि 'क' ने कोई पहल नहीं की होती तो 'ख' को कुछ भी नहीं मिला होता। विश्वास के इस खेल में, एक बार 'ख' यह तय करता है कि 'क' को कितना देना है, वह 'क' को दे दिया जाता है, और इसी के साथ यह कार्य समाप्त हो जाता है (होल्ड-अप खेल इसी का एक भिन्न रूप है जिसमें समापन नियम ज़रा भिन्न हैं)।

एक निपट स्वार्थी दुनिया में हम यही उम्मीद करेंगे कि 'ख' 'क' को धन देने की कोई पेशकश नहीं करेगा और यही अनुमान करके पहले ही 'क' भी 'ख' को कोई धन नहीं देगा। यद्यपि, पूरी दुनिया में किए गए इस प्रकार के तथा संबंधित खेलों के प्रयोग दर्शाते हैं कि अधिकतर मामलों में पहला भागीदार दूसरे भागीदार को पैसा दे देता है और दूसरा भागीदार पहले भागीदार को अपनी आमदनी का कुछ अंश लौटा देता है। इसके अलावा, ऐसी स्थितियां भी होती है जिनके चलते भागीदारों के बीच इस प्रकार के सहयोगात्मक व्यवहार की अधिक प्रवृत्ति दिखाई देती है। हाल ही में होडका मोरिटा और मारोस सेर्वाटका ने कैन्टरबरी यूनिवर्सिटी में न्यूजीलैंड एक्सपैरीमैन्टल इकोनोमिक्स लेबोरेट्री में 258 पूर्व स्नातक छात्रों पर होल्ड-अप गेम का प्रयोग करते हुए एक प्रयोग किया। उन्होंने पाया कि लोगों ने सकारात्मक सोच के साथ निवेश किया और निवेश पाने वाले व्यक्ति ने निवेशक को कुछ लाभांश लौटाया। इसके अलावा, यदि प्रतिभागियों को शुरू में ही यह विश्वास दिला दिया जाए कि उनकी एक ही सामूहिक पहचान है तो उनमें और अधिक सहयोग करने का रुझान रहता है।

जो बात आमतौर पर स्वीकारी नहीं गई है लेकिन जिसका जिक्र किया जाना चाहिए, वह यह है कि विश्वास के खेल और अर्थव्यवस्था के कार्यदक्ष कार्यकरण में नैतिकता और विश्वसनीयता की अहम भूमिका पर आरंभिक टिप्पणियां डेविड ह्यूम के 1739 क्लासिक ''*ए ट्रीटिज़ ऑन ह्यूमन नेचर* (पुस्तक III भाग III खण्ड iv): में प्रकट हुई: ''मानवता का वाणिज्य वस्तु-विनिमय तक ही सीमित नहीं है, बल्कि सेवा और कार्यों पर भी लागू होता है, जिनका हम अपने पारस्परिक हितों और फायदों के लिए आदान-प्रदान करते हैं। आपका मक्का आज पका है; कल मेरा पक जाएगा। यह हम दोनों के लिए फायदेमंद होगा कि मैं आज तुम्हारे साथ काम करूं और कल तुम मेरी मदद करो। मुझे तुमसे कोई सहानुभूति नहीं और मैं जानता हूं कि तुम्हारे मन में भी मेरे लिए कोई हमदर्दी नहीं। मैं तुम्हारे लिए कष्ट नहीं उठाऊंगा और यदि मैं किसी प्रतिफल की उम्मीद में तुम्हारे साथ मेहनत करूं तो मुझे निश्चित जान लेना चाहिए कि मुझे निराशा ही मिलेगी और यह कि मैं फिजूल ही तुम्हारा अहसानमंद रहूं। तो फिर मैं तुम्हें अकेले काम करने देता हूं। तुम भी मेरे साथ ऐसा ही करो। मौसम बदलेंगे; और हम दोनों ही परस्पर विश्वास और सुरक्षा के अभाव में अपनी फसल से हाथ धो बैठेंगे।''

सन्दर्भ: **आर बेनाबू और जे. टिरोल (2006) ''इन्सेन्टिव्ज़ एण्ड प्रोसोशल बिहेवियर'', *अमेरिकन इकोनोमिक रिव्यू* 96**

टी. एलिंगसेन एण्ड एम जोहेनसन (2008) 'प्राइड एण्ड प्रेज्यूडिज़' *अमेरिकन इकोनोमिक रिव्यू* 98

ई. फेहर एण्ड एस गैचर (2000) 'फेयरनेस एण्ड रिटैलिएशन' *जर्नल ऑफ इकोनोमिक पर्सपेक्टिव्ज़* 14

एफ. फुकुयामा, (1996) *ट्रस्ट: द सोशल वर्च्यूज एण्ड द क्रिएशन ऑफ प्रास्पेरिटी* फ्री प्रेस

एच. गिंटिस, एस बॉल्स, आर. बाइड और ई. फेहर (2003) 'एक्सप्लेनिंग अल्ट्रयूस्टिक बिहेवियर इन हयूमन्स', *इवोल्यूशन एण्ड ह्यूमन बिहेवियर* 4

एच मोरिटा एण्ड एम सेर्वाटका (2011) 'ग्रुप आइडेन्टिटी एण्ड रिलेशन-स्पेसिफिक इन्वेस्टमेंट, मिमिओ: यूनिवर्सिटी ऑफ न्यू साउथ वेल्स

करूंगा और कल तुम मुझे ''ख'' की अदायगी करोगे। इन मामलों में, ऐसे वायदों को पूरा करने के लिए हर बार पुलिसमैन और जज को बुलाना संभव नहीं होगा। इन छोटे-छोटे अनुबंधों को पूरा करने का बेहतरीन तरीका है हमारा वचन, ''ईमानदारी की संस्कृति'' और विश्वसनीयता। यदि कोई नागरिक वर्ग विशेष विश्वसनीय माना जाता है, तो यही संभावना अधिक है कि लोग उस राष्ट्र के लोगों के साथ सौदा-करार करना पसंद करेंगे और समय बीतने पर उस राष्ट्र की स्थिति बेहतर होती जाएगी और वह आर्थिक रूप से समृद्ध होता जाएगा।

2.51 भारत का तेज़ी से विकास हो और अर्थव्यवस्था के रूप में वह बेहतर दर्जा हासिल करे, इसके लिए यह ज़रूरी है कि ईमानदारी और विश्वसनीयता की संस्कृति को बढ़ावा दिया जाए। आर्थिक विकास की इस सामाजिक पूर्वापेक्षा के बहुत समय तक उपेक्षित रहने की वजह से इस पर वैज्ञानिक साहित्य में पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है। सौभाग्यवश, हाल में किए गए आर्थिक अनुसंधान में बहुत हद तक इन सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों के महत्व पर बल दिया गया है। हालांकि यह सच है कि अभी तक हमारे पास ऐसी कोई निश्चित विधि नहीं है जिससे कि हम जान पाएं कि इन सांस्कृतिक गुणों को किसी आबादी में कैसे विकसित किया जाए, फिर भी हम यह ज़रूर जानते हैं कि किसी वर्ग विशेष के आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए कतिपय गुणों के महत्व को सिर्फ समझ लेने से ही लोगों में इन गुणों को पुष्पित-पल्लवित करने में मदद मिलती है। आखिरकार, लोगों ने भीड़ भरे कमरे में धूम्रपान न करना सीख लिया है, इसलिए नहीं कि धूम्रपान न करना उनके अपने हित में नहीं है बल्कि सिर्फ इसलिए कि उन्हें यह समझ में आ गया है कि यह उनके सामूहिक हित में नहीं है। इन श्रेष्ठ मूल्यों को आगे चलकर समाज में सामाजिक निन्दा के ज़रिए और बढ़ावा मिलता है जिससे मनुष्य और सामाजिक हितों के बीच एकरूपता लाने में मदद मिलती है। इसलिए जब हम यह स्वीकार कर लेते हैं कि ईमानदारी, सत्यनिष्ठा और विश्वसनीयता न सिर्फ अपने आप में श्रेष्ठ नैतिक गुण हैं बल्कि ये ऐसे गुण हैं कि जब इन्हें समाज द्वारा आत्मसात किया जाता है, तो आर्थिक प्रगति और मानव विकास होता है, तब लोगों में इन गुणों को ग्रहण करने का रूझान पैदा होगा; और इस तरह एक अधिक सहिष्णु और प्रगतिशील समाज का निर्माण करने में मदद मिलेगी।